नुन्द ऋषि



जम्मू एन्ड कश्मीर एकाडमी आफ आर्ट
कल्चर एन्ड लैंगवेज

नुंद ऋषि

[शेख नुरुद्दीन ऋषि की कविता का प्रतिनिधि संकलन,
परिचय, आलोचना तथा हिन्दी पद्यानुवाद सहित]

अनुवादक

शंभुनाथ भट्ट हलीम

शशि शेखर तोषखानी

अर्जुन देव मजबूर

बद्रीनाथ कल्ला

तथा

रतनलाल शाँत

सम्पादक

रतनलाल शाँत

जम्मू कश्मीर कला संस्कृति तथा भाषा अकेडेमी

श्रीनगर

१९७९

I. प्रेरणा, प्रस्तुति

II. कवि, नुरुद्दीन, शेख-उल-आलम, नुंद ऋषि

III. अनुवादक—अनुगायक

IV. श्रुक– अनुभाग

V. गीत अनुभाग

पहला शब्द

शेख नूरुद्दीन ऋषि कश्मीर ही नहीं, सारे भारत की तहजीबी तारीख में एक अहम संगेमील की हैसियत से खड़े हैं। पीरपंचाल की विशाल चोटियों ने इस रोशन चिराग की किरणों को फानूस की तरह इस तरह से छिपा लिया है कि बीरूनी दुनिया बड़ी देर तक इसके नूर से लाभान्वित हो सकी। उनका ज़माना कश्मीर में शैवमत (त्रिक संप्रदाय) और इस्लाम के उभरते हुए रूहानी निज़ाम के मिलाप का ज़माना था। जब दो सिम्तों से आने वाली दो बड़ी धाराएं किसी संगम की तरह बढ़ें तो वहां टकराव और तसादुम का अंदेशा होता है। लेकिन कश्मीर में सूरते हाल बिल्कुल मुख्तलिफ रही और यह खास तौर शेख नूरुद्दीन की मामलाफहमी, तदब्बुर और रूहानी कमाल का समर था। इस बात की शहादतें मिलती हैं कि कश्मीर के शैवमत और इस्लाम के कुबरविया मक्तबे तसब्बुफ़ का डायलाग अभिनवगुप्त (ग्यारहवीं सदी ईस्वीं) के वक्त से पहले भी शुरू हो चुका था, लेकिन इसे Detente का रंग और रूप शेखनूरुद्दीन ने अता किया। उन्होंने शैवमत के फलसफे को एक शफीक औरत की तरह इस्तेमाल किया और उसमें इस्लामी फिक्र की मर्दाना पहल का बीज बोकर एक ऐसे तहज़ीबी आमेज़े की, तश्कील की, जो कश्मीर के खास रंग की छाप लिए हुए है। इस तरह से शैवमत की प्रकृति और पुरुष के इमेज तो ज्यों के त्यों रहे लेकिन उनकी बातिनी माहियत इनकिलाबपज़ीर हो गई, जिसने एक थकी हुई तहज़ीबी लहर में नया तख़्लीकी जौहर भर दिया जिसकी कोंपले आज छः सौ साल के बाद बर्गो बार ला रही हैं। यही अजीबो-गरीब कारनामा हज़रत शेख को कश्मीरी तमद्दुन का अलमदार और कश्मीर के हिंदू और मुस्लमानों का महबूब व मरग़ूब पेशवा बना देता है। यह अम्र बाइसे मसर्रत है कि अकादमी ने अब राष्ट्रभाषा हज़रते

शेख के कलाम की मय-ए-मारिफत उंडेल दी है। इससे कब्ल हम डा० शशि शेखर तोशखानी का एक हिंदी तर्जुमा ज़्यादा तफ़सीली है और शायद इसकी मदद से कलामे शेख के हिंदी शायकीन के लिए उनके कलाम के असरारो रमूज़ को बेहतर तौर पर समझने में मदद मिले और इस तरह मुल्क की भक्ति तहरीक में उन्हें उनका जायज़ और मुनासिब कदम हासिल हो जायगा।

लालमंडी, श्रीनगर
१२ नवम्बर, १६८०

मुहम्मद यूसुफ रेंग
सेक्रेट्री

प्रेरणा प्रस्तुति

प्रेरणा

शेखनूरुद्दीन ऋषि के छः सौवें वर्ष का जन्मोत्सव मनाने का निश्चय कश्मीर सरकार ने सन् १९७८ में किया तथा एक कमेटी नियुक्त की। इसके जिम्मे कश्मीरी भाषा के इस बुजुर्ग कवि की प्रामाणिक जीवनी तैयार कराना और उनके कृतित्व का निश्चय कराके उस पर नये सिरे से विद्वानों से शोध कराना था। तदनन्तर वर्ष भर में पूरी कश्मीर घाटी में जगह-जगह साहित्यिक तथा सांस्कृतिक उत्सव हुए और साहित्यिक सेमिनार कराए गए। कश्मीरी भाषा में तथा कश्मीर से निकलने वाले अन्य भाषाओं के प्रत्रों-पत्रिकाओं के शेख-उल-आलम विशेषांक निकलवाए गए। इस प्रकार आज से छः सौ वर्ष पूर्व के कश्मीरी काव्य, भाषा, इतिहास, संस्कृति, धर्म तथा जीवन-पद्धति पर सोचने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला।

राज्य की कल्चरल अकादमी के जिम्मे कार्य का अधिकांश भार था, इसलिए इस संस्था के सुनियोजित कार्यक्रमों तथा प्रकाशनों के द्वारा यह काम अधिक व्यवस्था से कराया गया। शेख की कविता का कश्मीरी-इतर भाषाओं में अनुवाद कराया गया। इसी सिलसिले में उनकी कविता के प्रतिनिधि भाग को हिंदी में भी अनूदित कराया गया। हिंदी में इस प्रकार का पहला कदम, षठ्शती जयन्ती समारोहों से पूर्व, श्री शशि शेखर तोषखानी द्वारा 'ऋषि ने कहा था' नामक अनुवाद प्रकाशित कराके उठाया गया था। प्रस्तुत प्रयास अधिक विस्तृत और प्रतिनिधि है, इस दृष्टि से कि इसमें और भी अनुवादकों का सहयोग लिया गया।

प्रस्तुति

प्रस्तुत संकलन का उद्देश्य शेखनूरुद्दीन की रचना का प्रतिनिधि रूप उभारना है कि हिन्दी भाषा पाठक को कबीर, नानक तुकाराम के समकालीन इस कश्मीरी कवि की प्रतिनिधि कविता के द्वारा उसके कृतित्व की बानगी पासके, उसके कृतित्व के बहुरूपत्व तथा कई स्तरों पर छू देने वाली संवेदना का स्पर्श पासके। इसी कारण इस संकलन में शेख की कविता से श्रुक (श्लोक) पद (लंबे श्रुक) तथा गीतों को दिया गया है। शेख ने जितने छंदों का प्रयोग किया उन का प्रतिनिधि संचयन किया गया है।

कश्मीरी का मूल पाठ पढ़ सकने अर्थात कश्मीरी भाषा पढ़ सकने की क्षमता पैदा कराना हमारा उद्देश्य नहीं क्योंकि वैसा असामयिक होगा। केवल साहित्यिक मूल्य का रसास्वादन कराना इस अनुवाद का उद्देश्य है। एक अनुवादक से गद्य में ही अर्थ और गहरी दार्शनिक व्याख्या कराकर फिर उन्हीं पदों का पद्यानुवाद प्रस्तुत कराने का उद्देश्य कविता के विचार पक्ष तथा काव्य सरसता दोनों को समझाना है। और अनुवादकों के द्वारा यथा सम्भव पद्यानुवाद ही कराया गया है। जोर अर्थ के मौलिक सौंदर्य की सुरक्षा पर दिया गया है केवल तुक की रक्षा पर नहीं। पर यह याद रखना जरूरी है कि छः सौ वर्ष पूर्व के इस कवि की कविता का अभी सही पाठ भी निश्चित नहीं हुआ है। पाठालोचन के अभाव में कई शब्द ही बिगड़ गए हैं कि उनका सही रूप जाने बिना अनुवाद करना बहुत मुश्किल हो जाता है। कई शब्द अब अप्रचलित हैं इसलिए उनका सही अथ करने का काम शोधार्थी का पहले और अनुवादक का बाद में होता है। शोध तो इस पर अब शुरू हुआ है।

कवि, नुरुद्दीन, शेखउलआलम, नुंदऋषि

कवि

शेख नूरुद्दीन के व्यक्तित्व पर उसके उपदेश तथा प्रवचक रूप का इतना आरोप हुआ है कि यह करीब भुलाया जाता है कि वे एक सक्षम कवि थे। संत, भक्त कवियों के साथ यह हुआ है, कम से कम तब तक जब तक कि उनकी कविता को ठाकुर द्वारे से बाहर न निकाला गया। जब तक कि उनके काव्य ग्रंथ फूल पानी से पुजते रहे, उन्हें कवि मानना उनका अपमान करने के समान था। शेख नूरुद्दीन कश्मीर में इस्लाम का स्थानीय तथा मौलिक पर्याय हैं। इस्लाम को यहां का स्थानीय रंग इन्होंने अपने कर्म तथा कविता से दिया। कबीर की तरह उनके अनुयायियों ने भी उनको संस्थाबद्ध कर दिया और धार्मिक मौलवियों ने उनको आस्तानों में मंत्रबद्ध कर दिया। यह भुलाया गया कि नूरुद्दीन की धार्मिक लोकप्रियता भी उनकी उक्तियों का परिणाम है।

कवि की उपलब्धि उसके काव्यानुभव की गहनता तथा अभिव्यक्ति की प्रेषणीयता होती है। काव्यानुभव सृजन प्रक्रिया के चरणों से जैसे गुजरा हो, उसी अनुभव प्रक्रिया से पाठक को भी गुजराने में उसकी इयत्ता होती है। अनुभव जीवन के किसी भी क्षेत्र से लिया गया हो, काव्यशक्ति की छुअन से वह असाधारण हो उठता है और अर्थों की छवियां देता है। नूरुद्दीन का अनुभव कुछ भिन्न है—सामान्य सांसारिक अनुभव से, जिसमें प्रेम प्यार, घृणा, श्रद्धा, द्वेष स्नेह, करुणा के तंतुओं से तानाबाना बुना होता है। वे तो उस

स्थिति से दो-चार हैं जब व्यक्ति स्वयं को जीवन के मूल प्रश्नों के सम्मुख पाता है। जीव, ईश्वर मृत्यु, लोकान्तर के प्रश्नों के सम्मुख। यह ठीक है कि हर अनुभवकर्ता किन्हीं परम्परा पुष्ट रोशनियों के प्रकाश में इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ता है, पर यह भी सत्य है कि परोपार्जित सत्यों की अनुभव प्राप्ति की इसी प्रक्रिया में वह खुद अपने लिए भी कुछ नये सत्य अन्वेषित करता है। नूरुद्दीन की पूंजी घाटी में नवप्रविष्ठ इस्लाम का अलौकिक धार्मिक और सूफी पक्ष था। उन्होंने अपनी ओर से इसे सांसारिक नींव पर खड़ा किया। खुद संसार के आधार पर खड़े रहकर वे इस्लामी दृष्टि से परा-सांसारिक ईश्वरीय अनुभव को गहने का प्रयत्न करते हैं।

जीवन को उसके सही रूप में मूल्यांकित करने के लिए उसे इस संसार के दूसरे अटल सत्य मृत्यु की तुलना में देखा जा सकता है। यह संयोग नहीं कि सभी धर्मों में मृत्यु का विश्लेषण किया गया है। इहलोक को सुधारने के लिए इसे एक भीति के तौर पर व्याख्यायित किया गया तथा परलोक में उत्तम गति की प्राप्ति के लिए इसे अपने धर्म बल से पार करने और जीतने की सलाह दी गई है। इस दशा में भी इसको विश्लेषित किया गया है। नरक की ही तरह इस्लाम में कयामत के रोज़े हिसाब तथा नारे जहन्नुम का खोल कर संकेत किया गया है। नूरुद्दीन इसे दोहराते भर नहीं बल्कि अपनी काव्यशक्ति से, शब्दचित्र, बिम्ब, दृष्टान्त तथा उदाहरण से ऐसा प्रस्तुत करते हैं कि दृश्य नितान्त भयावना हो उठता है और कवि को अनुभव की गहराई का विश्वास हो जाता है—

काल सिंह है उससे दूर कहां भागोगे ?
झुण्ड बीच वह खींच पकड़ ले जायेगा ही
शरबत है रे मौत, पिये बिन ठीक न होगे
पहले ही यह बात न क्यों तुम जान सके हो ? (श-शे)†

यह केवल विरोधाभास नहीं, बिडंबना है कि मौत को भोगना भी है

---

† अनुवादकों के नामों का संक्षिप्त संकेत :—
श-शे—शशिशेखर, ब-क—बद्रीनाथ कल्ला, मज—मजबूर, शां—रतनलाल शांत।

और त्यागना भी । जन्म लेने का अभिशाप है यह ।

मारक तीर लगेगा तो फिर घाव न भर पाएगा
जन्म लिया तो मछली जैसा हाथ फंस गया जाल में
भीतर का मल निकल जाए तो बाहर से धोना क्या
वहां जलेगा चाम तलेंगे तुझे उबलते तेल में । (शां)

मृत्यु की यह आक्रांति किसी पलायन वृत्ति की उपज नहीं । संतों ने बार बार दुनिया के जंज़ाल तथा मृत्यु के अभिशाप से बचने की सलाह दी है । केवल धर्म या ईश्वर की ओर उन्मुख कराने का यह प्रयास नहीं । मौत का कड़ुआ सत्य किसी भी चिंतक दार्शनिक या अनुभूतिशील व्यक्ति के मन को झिझोड़ता रह सकता है । बीसवीं शती में दो महायुद्धों ने मृत्यु को आसन्न सत्य, निश्चित संभावना का रूप दिया । वर्तमान के क्षणजीवी कवि भी इस सदा उपस्थित सत्य से विमुख नहीं हो सके । संत और सूफी कवि जीवन को सनातन चैतन्य की एक कड़ी के रूप में देखते हुए इसे मृत्यु से घिरा पाते रहे हैं, कवि नूरुद्दीन इस सत्य को निजी जीवन पट से उतारकर नितान्त निजी एप्रोच से उकेरते हैं और यहीं कवि के अनुभव की सभी छायाएं दिख जाती हैं :—

मेरी चित्र-मंडोली किसने की कजरारी ?
चोर लजालू की देखी मैंने है छाया
भाग चुका यह अब मैं काहे आंखें मलूं
मुझे भागने को खुद भी तो मिला न ठांव
प्रज्वलित यह कोहेनूर भी राख हुआ
टोही शेर छिपा सियार की मुख-माया में । (शां)

जहां आधुनिक कवि समकालीन भयंकर वातावरण से त्रस्त हैं और इस त्रास के स्रोतों का वर्णन करता है, यहां नूरुद्दीन जगत की असारता, पाप के बोध आदि की स्थिति में आदमी की मजबूरी का चित्रण करता है ।

जीवन अस्थिर है पवन भी अस्थिर
चित्त भी इसी लिए अस्थिर—सार

इन पदों का चिंतन सही हो
रे खुदा मेरे पाप निवार । (ब-क)

मनका चोर तुझे काटे है
प्रतिदिन चाहे रिश्वत देना
जाना है पर-गेह अन्त में
मायारूपी जीवन के लो आये है मेहमान । (मज)

इस अनुभव का किसी विशिष्ट धर्म या पौराणिक कथा-माला से कोई विशेष संबंध नहीं । यह अपनी अनुभव-जन्य व्याख्या है और इसीलिए तो कवि इस बात के लिए आग्रहयुत विनय करता है कि इन बातों पर, मेरे पदों पर विचार किया जाए ।

अधिकतर शेख नूरुद्दीन ने श्रुक' अर्थात चार पंक्तियों के 'श्लोक' कहे हैं पर कहीं ये चार पंक्तियां अनुभव के विस्तार या गहनता के कारण लंबे हो जाती हैं और छोटे-मोटे गीत बन जाते हैं । यों अलग से भी उन्होंने गीत लिखे हैं, या ऐसी चतुष्पदियां जिनमें गीत्यात्मकता है, पर इन लम्बे श्लोकों में कविता का अलग ही निखार मिलता है । इनमें एक साथ दो बातें मिलती हैं : अनुभव की निर्मम सत्यता की चुभन तथा उस चुभन का वाहक रागात्मक बिंब । बिंब हो या शब्द, शेख इन दोनों को अपने अनगढ़ ग्राम्य जीवन से लेते है:—

पड़ गई हाड़ में नींद कि अब तक
आया पूस महीना !
दिन गिना कामका गया एक भी नहीं
अकारथ जीना—
मेरा, तब चेत हुआ पर्वत-सा कठिन हुआ
जब हिलना
इतने में बोला काल, 'चलो तुमको मेरे संग चलना ?'
(श-शे)

इसमें जीवन के कठोरतम सत्य के साथ सीधी मुठभेड़ का वर्णन है पर काल का आना कोई प्रिय फिनामिनन नहीं लगता, इस तथ्य के बावजूद कि

जीवन उतना मधुर नहीं कि जीने या चिपककर रहने की लालसा जाग जाए। यही विडम्बना है, विषमता की स्वीकृति की विडम्बना जिसे कवि ने वाणी दी है, लम्बे श्लोकों में पकड़ा है:—

सहन कठिन है जैसे सहो कड़कती बिजली
सहन कठिन है उजले दिन में अंधकार
सहन कठिन है कांधों पर ढोना पर्वत
सहन कठिन है बीच हाथ लेना अंगार
सहन कठिन है तन पर चक्की चलवाना
सहन कठिन है कटु विष का जैसे आहार। (शां)

यहां अनुभव की गहराई को अभिव्यक्ति की बहु चित्रता में ज़बान मिल जाती है। उदाहरणों रूपकों की झड़ी लग जाती है। शेख के बिम्बों की विशेषता यह है कि एक दूसरे से संबद्ध न होकर भी एक श्लोक में इस तरह अड़े होते हैं कि एक ही प्रभाव देते हैं। कुल मिलाकर भी देखें तो पूरी कविता का फिर एक ही प्रभाव हो जाता है। रूपक रचना के उदाहरण देखें :—

प्राण मेरे, तू कड़ी गांठ है खूबानी के पेड़ की

□ □ □

अहंकार ! मेरे पीछे क्यों क्या कर तू कुत्ता लगा रहा

□ □ □

प्रकृति अरे दुल्हन, दूल्हा है प्राण यहां

उपमाएं, दृष्टांत भी स्थानीय मिट्टी की गंध को नहीं छोड़ पाए हैं, यद्यपि इनमें संतकाव्योचित अवदान (motifs) भी मिलते हैं :—

गुदड़ी से हो रहे लिपट कर जो सावन-आषाढ़ में

□ □ □

ढीठ ज़माने को इस कलिकाल को
राजहंस सा उड़ कर मैंने पार किया

□ □ □

है पेट मुझे जिसने लज्जित करवाया
मदमाते कुंजर सा वह सांकल तोड़े

□ □ □

जैसे जल मिट्टी के भांडों में पच जाय (श—शे)

विचार तथा भाव की बारीकी जब अरूप हो जाती है तो कवि में कश्मीरी सूफी कवियों की सी दुरूहता और बहु-अर्थकता एक साथ आ जाती है। वास्तव में यह विशेषता कश्मीरी की आदि-कवयित्री लल्लेश्वरी (लल-द्यद) से ही चली आ रही है जो फिर आगे सूफी कवियों की कई पीढ़ियों को प्रभावित करती रही है।† इन में शेख के अतिरिक्त शम्स फकीर, स्वछि काल, रहमान डार, श्याम साहब और अहद ज़रगर आदि कवि गिनाए जा सकते हैं। इसके अन्तर्गत रहस्यमयता सांकेतिकता, विरोधाभास तथा नीति-परकता का बाहुल्य मिलता है।

मन का तुरंग न भागे इसकी बाग सम्भालो
बस में करो उड़ा जा रहा प्राण-पवन
शशि की कला शीर्ष से पिघल पिघल बहेगी
शिव और शून्य यों एक होंगे, होगा मिलन। (शां)

□ □ □

मानेगा अद्वैत : कहीं तू एक रहेगा
इसी भाव ने है प्रकाश जितना उपजाया
बुद्धि और चिंतन भेजेगा कहां वहां तू
कौन, अरे भाई, उस दरिया को पी पाया ? (श—शे)

---

†कश्मीरी की सूफी काव्य परम्परा, हिंदी के प्रेमाख्यानक सूफी काव्य से ज़रा भिन्न है और काव्यशैली तथा एप्रोच की दृष्टि से संत कवियों के निकट पड़ती है। कहीं-कहीं तो दृष्टकूट पदों के भक्त कवि सगुण सूर के निकट पड़ती है।

इस प्रकार का काव्यानुभव केवल शब्द और भाव की परम्परा से नहीं पाया जा सकता। यहां एक अनिर्वचनीय अनुभूति को यथा सम्भव सरलतम मुहावरे में ढालने का प्रयत्न है। यह स्मरणीय है कि नूरुद्दीन, कबीर तथा नानक की तरह, जन साधारण के बीच रमकर उन्हें अपने एकांतिक अनुभव में शामिल कराना चाहते थे। इसीलिए तो कभी उन में सम्बोधन अपने प्रति, कभी साधु तथा कभी सांसारिक जीव के प्रति मिलता है। स्वयं सम्बोधित कविताएं केवल अपने अहं को, अपने व्यक्तित्व को पहचानने का प्रयास नहीं, यद्यपि इनमें से अधिकांश का अभिप्राय यही है।

प्रण जो किया उसे तुम पूरा कर लो जी
भूले वादे आएंगे भी तुम को याद ?
यहां गधा ले गए बिना सोचे जो तुम
यह केसर की बगिया कर लेगा बर्बाद
कौन वहां तेरे बदले, झेले, मूरख !
अपनी छाती-कांधे पर तलवार धार ?
मरने से पहले तुमको मरना होगा
तभी बढ़ेगा रुतबा तेरा मरण पार। (शां)

मरने से पहले मरना, वास्तव में जीवन-मृत्यु या जीवन्मुक्ति के संतोचित कान्सेप्ट के निकट पड़ता है। यहां मृत्यु का केवल देहान्त वाला अर्थ नहीं रहता बल्कि एक पूरी अनुभव-प्रक्रिया का अर्थ। संबोधन 'तुम' को है जो 'मैं' भी हो सकता है, 'जीव' भी हो सकता है। 'तुम' तो केवल माध्यम है। इन पदों में शब्दों के नए प्रतीकार्थ हो जाते हैं। 'प्रण'—जीव का जन्म लेने से पहले का ईश्वर-सादृश्य 'इना अल्लाह मुए-उल (सब जीव अल्लाह से ही आते हैं और उसी में लीन होते हैं—कुरान) † गधा—हमारे साथ रह कर हमें पथच्युत करने वाला शैतान, केसर की बगिया—यह शुद्ध-बुद्ध जीवन, वहां —परलोक में, कयामत के दिन।

'नौका से जाऊं या पैदल ही धाऊं ?
इस दुविधा में फंसकर तू कहां टिकेगा ?

†तुलनीय: तयेतत्सृज्यते सर्वं तस्यामेव प्रलीयते। (भवानी सहस्रनाम)

यदि एक दिशा में होगा तू पथगामी
तो दूर पंथ हो कितना—नहीं थकेगा
काटेगा जब तक तू न अरे भव-बंधन
तब तक तू कैसे सुखी रहेगा, ओ मन ? (श—शे)

अन्य रहस्यमय या रहस्यवादी कविता की तरह ऐसी कविता काफी लोकप्रिय हुई है। यद्यपि जनता इनके सब संकेतों प्रतीकों का उद्दिष्ट अर्थ नहीं समझती फिर भी उन्हें लगता है कि उनकी निज की किसी मनोदशा या भौतिक स्थिति का वर्णन हो रहा है। इसीलिए तो लल्लेश्वरी के बाद शेख-नूरुद्दीन की उक्तियां जनभाषा का अंग बन गई और लोकोक्तियां तथा मुहावरों का स्थान ले चुकी है :

मेरे पत्तों को सींचा, जड़ें काट डालीं

□ □ □

काग गिरी ले उड़े, हुद-हुद को आए बाण

□ □ □

दरांतियां गढ़ लीं मैं ने तोड़कर के करवाल

□ □ □

छुरे मांस में क्या विवाद ?

□ □ □

अन्न पड़े पूरा जब वन पूरे बच जायं

□ □ □

मोती का बस मोल जानता गोताखोर
कहां सेतु का रस्ता है क्या जाने ढोर ?
मशाल काठ की, कद्र दिये की क्या जाने
मक्खी क्या जाने है गति परवाने की ! (श—शे)

□ □ □

अपने समकालीन यथार्थ को शेख ने नितांत व्यंगात्मक दृष्टि से देखा तथा उसे उधेड़ कर रख दिया। कबीर ने भी आडंबरयुक्त मुल्ला तथा पांडे को

व्यंग्य बाणों से छलनी कर दिया था। शेख नूरुद्दीन ने पाखंडी को तो आघात विह्वल किया, साथ ही साधारण जनता के भी सामाजिक तथा भौतिक आचरण के गुणदोष का विवेचन किया। ऐसा करते हुए वे बड़े निर्मम हैं –

बैठ स्वयं तुम महलों में
कैसे दोगे स्थान अतिथि को ?
चंदन देह जब काटे तरखान
क्या दोगे तुम विचित्र सृजक को (मज)

□ □ □

महंगे में बेचा जो सस्ते में पाया
पर, डाल, नमक मैं सब दरिया में आया
मीठी वाणी में औरों को फुसलाया
दूं किसे दोष—खुद मैंने धोखा खाया (श—शे)

यह समाज के प्रति वैसी ही जिम्मेवारी है जैसी संतों की थी। इसमें कभी पलायन वादिता लग सकती है, पर सत्य यह है कि ईश-भक्ति ही को बदल समझने के कारण सामाजिक विषमता के प्रति किया गया व्यंग्य पूर्वाग्रह पूर्ण लगता है। वरना औरों की तरह शेखनूरुद्दीन भी समाज बोध से हीन नहीं। सामजिक विषमता का विस्तृत वर्णन शेख ने अपने तथा कथित गीतों में किया है। इन में तो रहस्यानुभव की अपेक्षा ऐंद्रिक तथा पार्थिव समस्याओं से टक्कर ली गई है।

एक व्यक्ति के द्वार बजैया बाजे बजा रहा है···
किसी और की डंडे चाबुक से हो रही पिटाई···

□ □ □

पास कई के शत-शत कोठे भरे धान के···
भोजन नहीं किन्ही को मिलता बच्चे रोते···

□ □ □

पिछड़ गए कुछ मुंह ढक कर रोया करते हैं
श्रम न करें वे हाथों में भी न लें दरांती
तपी शुष्क है भूमि किन्हीं की, वे रोते हैं··· (शां)

□ □ □

ध्यातव्य है कि इन में केवल वर्णन नहीं बल्कि व्यंग्य भी रेखांकित है। ये गीत साफ बताते हैं कि इस बहुत यात्रा करने वाले कवि का पर्यवेक्षण क्षेत्र कितना विस्तृत था। भाग्यशाली पुरुषों, भाग्यहीन अबलाओं तथा सामाजिक अन्याय में पिस रहे शोषित व्यक्ति का एक ही सांस में चित्रण करना इन ही का बूता है। कभी आत्मा तथा कभी माया को संबोधित करते हुए 'जोबन की दीवानी' गीत में यद्यपि सांसारिक मिथ्यात्व और शाश्वत सत्य का श्रेय गाया गया है पर लोक चेतना से ऐसी कविता सर्वदा मुक्त नहीं होती—

बीत गया दिन हाय ! कर रही इंतजार
फंसी लोभ में दबी हाय ! री मोहभार
आज बुढ़ापे बीच बसाएंगे घर बार ?
खुद समझ आएगी री जोबन की दीवानी ! (शां)

इन गीतों में कश्मीरी गीति परम्परा का विकास मिलता है। पहला ऐसा गीत शायद अवतार भट्ट (१३ वीं शती) की 'बाणासुर कथा' में मिलता है जहां भाषा की प्राकृत प्राकृति के बावजूद गीति की सरसता की रक्षा की गई है। गीतों की हल्की भौतिक भूमि उन गम्भीर रहस्यमय श्रुकों से ज़्यादा ग्राह्य हुई क्योंकि इनमें दैनंदिन की भाषा में दैनंदिन की समस्याएं ली गयीं। भले ही शेखनूरुद्दीन आदि कवयित्री ललद्यद के अनुभव की गहराई, परिवेश की समझ तथा अभिव्यक्ति के कौशल की तुलना में कम पड़ते हों, इतना अवश्य है कि उनका योगदान भी काफी महान है।

नुरुद्दीन

शेख नूरुद्दीन के पूर्वज कश्मीर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित एक छोटी सुन्दर घाटी 'किश्तवाड़' के राजा थे। 'संज़' (अथवा 'तेज') राजवंश के आंतरिक द्रोह से उग्रसंज़ तथा उनका एक भाई भाग कर कश्मीर आए और यहां दक्षिण कश्मीर में कुलगाम में रहने लगे। उग्रसंज़ को 'रौप्यवन' की जागीर दी गई क्योंकि संभव है यहां के शासक राजा रामदेव से उनके पहले से कुछ संबंध हों। स्थानीय सामंत खुमन्य वानी[1] ने स्वयं कहीं दावत पर जाते समय उग्रतेज़ को कार्यभारी सामंत बनाया। पर खुमन्य के एक शत्रु द्वारा हमले में उग्रतेज़ मारा गया। उग्र के दो बेटे हुए। उनमें एक ज़ंगा या जनका तेज़ (या संज़) खुमन्य का नौकर हुआ। जंगा के मरने पर फिर उसका बेटा हंबर (या शंभर) राजदरबारी हुआ। हंबर के अकेले पुत्र सलत (या सलर) ने दरबारी नौकरी छोड़ दी तथा तत्कालीन मुस्लमान प्रचारक सैयद समनानी की संगति में आकर मुस्लमान हो गया। उसका नाम बदलकर शेख सालारदीन हुआ। सैयद ने उसका विवाह बाल-अनाथ तथा विधवा सदर (सार्द्रा) से करा दिया। दोनों 'कयमू' नामक गांव में जा बसे। वहां से 'खइ' आए जहां एक दंतकथा के अनुसार, एक पंडित-पंडितानी के वार्तालाप को सुनकर, सोते में से उग आने वाले फूलों के गुच्छे को सूंघने से सदर के यहां बड़भागी संतान जन्मी—नूरुद्दीन। आज से पूरे छः सौ वर्ष पहले १३७८ ई० में।

नूरुद्दीन (प्यार से 'नुंद') ने जन्मते ही दूध नहीं पिया, जिस पर योगिनी लल्लेश्वरी ने, जो वहां से घूमते हुए आ रही थीं, उसे यह कहकर दूध पीने में प्रवृत्त कराया कि—

पी ले काका पी
जग में आने में जब शर्म नहीं आई
छाती से पीने में दूध
शर्म कैसी ?

---

१. वानी—वणिक, बनिया

नुंद के जीवन से बीसियों दंतकथाएं जुड़ी हैं जो एक ओर लोकमानस में उनके प्रति श्रद्धा के कारण भी पैदा हुई होंगी, पर साथ ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा, मनीषा, ज्ञान-गरिमा तथा व्यवहार-बुद्धि का अतिशयोक्त हो सही, संकेत करती हैं। लल्लेश्वरी का सान्निध्य तथा प्रभाव नुंद ने बचपन से ही ग्रहण किया जिसने उनके विचार में शैव आराधना तथा योग साधना को महनीय स्थान दिलाया।

बचपन में अपने सौतेले भाइयों के चरित्रहीन व्यवहार के बीच नुंद सदा एक चिन्तनशील, ईश्वर उन्मुख, नैतिक गंभीर्य से सम्पन्न बालक-सा व्यवहार करते रहे। कविता या कहें सूक्तियां कहने की आदत इनमें इसी काल में विकसित हुई। यह प्रवृत्ति जन्मभर रही। उचित अवसर पर उचित नैतिक उक्ति कहने या व्यंग्य से हंसने की वृत्ति उनमें सदा रही। युवक होने पर उनका विवाह ज़यद्यद (जयादादी—दादी बाद में दिया हुआ आदर-सूचक नाम है) से हुआ, और उनसे दो बच्चे हुए — ज़ून (ज्योत्स्ना) तथा हैदर। भाई नूरुद्दीन के विपरीत थे, ईश्वरभक्ति, दया, धर्म, नैतिकता तथा मनीषा में। दोनों बच्चे मर गए (या स्वयं इनकी प्रार्थनासे ईश्वर ने उठा लिए) पर वे वस्तुत: संसारकी माया से ही उदासीन थे। ज़यद्यद उनको जगतमोह में न बांध सकी। वे 'कयमू' की एक गुफा में कठोर साधना करने लग गए। सदरमाता तथा पत्नी का आग्रह (जो परम्परा से प्रश्नोत्तर शैली में पदबद्ध है) उन्हें संवरित नहीं कर सका। बारह वर्ष के इस गुफावास के दौरान वे करीब पूरे समय रोज़े से रहे; केवल वन्यशाक को पत्थर पर कूट कर खाते रहे, छेद किए बर्तन से दूध पीते रहे और फिर यह खानपान भी छोड़ दिया। बारह वर्ष की इस घोर तपस्या के बाद नूरुद्दीन कश्मीर में जगह-जगह घूमते रहे। उनके चमत्कारों की झड़ी लग गई। उन्हें लोकापवाद का सामना भी करना पड़ा। विषम दशा देखकर उनसे रहा नहीं जाता था और वे मौके-बेमौके लोगों को संबोधित कर उठते थे। फिर किन्हीं तीक्षण बुद्धि वाले व्यक्तियों का विदग्ध उत्तर सुनकर (यह प्रश्नोत्तर भी लोकपरम्परा में पदबद्ध मौजूद है) वे स्वयं को फिर सुधारने लग जाते। फिर ईशोपासना में लग गए और नए-नए शिष्यों शिष्याओं को अपने पंथ का गामी बनाते गए। फिर घुमक्कड़ी का जीवन बिताया। जगह-जगह उनके श्रद्धालु बढ़ते गए। इनमें हिन्दु भी थे और मुस्लमान भी। उनकी उक्तियों

में दोनों धर्मों की मूलभूत एकता का संकेत है। वे इस्लाम धर्म का प्रचार करते रहे वैसे ही जैसे जायसी। जायसी का कवित्व तथा दोनों धर्मों की दृष्टि ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। शेख नूरुद्दीन के धर्मपंथ संबंधी पद बिल्कुल नीरस लगते हैं। जो भी हो मुस्लमानों ने उन्हें श्रद्धावश शेखउलआलम (जगत्गुरु) शम्सउल-आरफीन (संतों में सूर्य) अलमदारे-कश्मीर (कश्मीर के ध्वजधारी) नामों से पुकारा तथा हिन्दुओं ने 'सहजानन्द'। वे 'ऋषि' कहलाए[१]। प्यार से 'नुंद ऋषि'। उनकी सभाओं में हिन्दु संत योगी भी होते और (शायद) बौद्ध अर्हत भी। जहां गए, इनके प्रयुक्त किए हुए वसन, बासन, आसन लोगों के लिए आराध्य हो गए, उनकी मृत्यु के बाद ये सब तीर्थ बन गए, साथ ही वे स्थल भी जहां जहां वे रहे। घाटी का उन्होंने दौरा कई बार किया, घाटी से बाहर किश्तवाड़ भी गए। वहां इनके आस्ताने बने। इनके सम्पर्क में कई अमुसलमान धर्म प्रचारक साधु संत आए और मुसलमान हो गए। इनमें बुमसाद (भौमसाधु) जोगी रिशी (ऋषि) र्‌वप (रौप्य) रिशी, रूप (रूप) रिशी, सह (सिंह) रिशी, जेनंदर (जैनेन्द्र) रिशी शामद्यद आदि प्रमुख हैं। दंतकथा में इनके तेज से किन्हीं का अभिभूत होना तथा किन्हीं का काठमार जाना भी बताया जाता है, लेकिन इनके संपूर्ण व्यक्तित्व को देखकर इनके विचार प्राबल्य को ही इनकी शक्ति माना जा सकता है।

शेख नूरुद्दीन का देहान्त १४३८ ई० में हुआ। रौप्यवन में मृत्यु हुई, फिर शव को च्रार शरीफ ले जाया गया। परम्परा है और फिर कई पुस्तकों में इसकी साक्षी भी मिलती है, कि इनके ज़नाज़े में कश्मीर के प्रसिद्ध उदार राजा तत्कालीन बादशाह (ज़ैन उल आबदीन) भी शरीक हुए थे। च्रारे शरीफ का रोज़ा आरभ में उन्हीं ने तामीर करवाया था।

कहा जाता है कि इनके नाम पर बडशाह पूर्व अफगान गवर्नर अता मुहम्मद खां ने सिक्का भी ढलवाया (१४२३ ई० में) इस प्रकार ये पहले ऐसे कवि हैं जिनके नाम पर सिक्का ढला। पर उस सिक्के पर 'नूरुद्दीन' के बजाय 'शाह नूरुद्दीन' खुदा होने के कारण विद्वानों में इस बारे में संदेह भी पाया जाता है।

---

१. कश्मीर में 'ऋषि' वैदिक 'ऋषि' से जरा भिन्न अर्थ रखता है। इसकी व्याख्या आगे देखिए।

शेख-उल-आलम

शेख नूरुद्दीन का जीवन तथा कृतित्व जिन साक्षियों पर आधृत है उन में उनके धर्मोपदेशक व्यक्तित्व से जुड़े दर्जनभर तीर्थ स्थान, उन स्थानों की पीरपरम्परा, और इस्लाम के स्थानीय संस्करण की उनकी रचनाकारिता का उतना ही महत्व है जितना उनके श्रुकों, गीतों उक्तियों तथा नीति उपदेशों का। यहां बहिर्साक्ष्य इतना अधिक उपलब्ध है कि अंतर्साक्ष्य धूमिल पड़ जाता है या फिर घिर जाता है। उनका इस्लाम-प्रचारक रूप बहुत स्पष्ट और प्रचलित है। बल्कि शेख का यह प्रचारकत्व और उपदेशकत्व उनके कवित्व पर इतना हावी है कि उनका कवित्व छिप जाता है। लोकप्रियता का प्रधान कारण उनका कृतित्व है क्योंकि सैयद समनानी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के प्रचारक और इस्लामी दार्शनिक अपनी तमाम विद्वत्ता के बावजूद इतने लोकप्रिय नहीं हो सके। पर यह दुर्भाग्य है कि फिर कृतित्व या तो छिप गया या अकृतित्व हो गया। उसमें अकृति भरी गई। जिस आडंबर का विरोध शेख ने किया, जिसे उन्होंने व्यंग्य से कचोट के रख दिया, वही उनकी कविता में भर गया। उन्हें इस्लाम का संस्थापक सिद्ध करने के लिए दैनिक निमाज़, रोज़ा, हज़, अल्लाह, पैगंबर, कयामत, जन्नत, जहन्नुम आदि संबंधी पद उनके नाम से चलाए गए जिन पर उनके कर्तृत्व का ज़रा भी आरोप नहीं किया जा सकता। नूरुद्दीन का कलाम या मौखिक परम्परा में या तो 'ऋषिनामों' और 'नूरनामों' में संग्रहीत है। जिन हस्तलेखों में ये मिलते हैं उनकी रचना शेख की मृत्यु के दो ढाई सौ वर्ष बाद हुई। इस बीच यह कविता मौलिक परम्परा से चली आ रही थी जिसमें संवर्द्धन और प्रक्षेप की ज़्यादा संभावना रही। अनेक पद तो शेख की मां तथा पत्नी से जोड़े जाते हैं या उनके रचे हुए हैं। कुछ कवि के कवि-शिष्यों ने भी रचे होंगे जो जनकी कविता में जुड़ गए। लल्लेश्वरी के अनेक 'वाक्' शेख के भी बताए जाते रहे हैं। पर दोनों में फर्क किया जा सकता है और इसकी आवश्यकता अभी भी है। इसका निश्चय अभी भी नहीं हुआ है। "तुक के आग्रह पर इस प्रकार के मूल रचयिता का निश्चय करना बेतुकी है। न तो लल्लेश्वरी में ही सर्वत्र भिन्नतुकांत की प्रवृत्ति मिलती है न शेख में सर्वत्र तुक का शपथपूर्वक प्रयोग !"[१] जो भी हो, दोनों जितने गड्डमड्ड हुए है

१. शशि शेखर— ऋषि ने कहा था।

उनको यथासंभव अलग करके भी एक बात रह-रह के उठती है कि तब तक क्या किया जाये ? आलोचना तब तक उनका मूल्यांकन न करे ? कम से कम अगर अभी इस दिशा से एक शुरूआत होती, अगर आलोचक शेख का सर्जकत्व स्थापित करने के लिए उनके प्रचारकत्व तथा धर्मगुरुत्व को कम वरीयता देने में सचेष्ट हो जाएं तो उनका सही मूल्यांकन हो पाता। वरना शेख-उल-आलम के पंथ में इस प्रकार की कविता का मिश्रण अवश्य अप्रिय है :—

भीति शुरू में हुई मुझे तो बड़ी वज़ू की, स्नान की
जब तक हुई सफ़ेद कि सारी दाढ़ी मुझ नादान की···

□

कुछ तो रोज़ों और निमाज़ों का कर्तव्य निभाते
उनके तो भगवान स्वयं ही रहते हैं हितकारी

□

भूखा आये तो भर भर पात्र उसे दो
नंगे से उसकी जाति कभी मत पूछो

□

आंखें पर नारी के सम्मुख न उठाना
उससे साधना राख सब हो जाएगी।

□

जल्दी तोबा करलो तो अवसर को तरलो
तोबा ही है पार कराने की नैया

□

इतना ही नहीं, इस्लामी कर्मकांड के हर अध्याय पर शेख ने लिखा। मामूली से मामूली प्रथा के पालन पर जोर दिया। उनके अनुयायी शेखत्व की रक्षा ही नहीं, उसे सुदृढ़ भी करते रहे। इस्लामी प्रचार में उनके ऐसे कथन का उपयोग किया। इनसे बड़े-बड़े संकोची, अनुदार कठमुल्ला धर्मांध भी पानी मांगते नज़र आते हैं और शेख के प्रतिभासंपन्न काव्य के प्रति दृष्टि संदिग्ध हो जाती

है। एक ओर जो हिन्दु मुस्लमान को 'एक मां के जाये' पुकारता है दूसरी ओर उसी से यह पद संबद्ध किया गया—

भक्तो ! काम हिन्दुओं के छोड़ो
और पकड़ लो सच्चाई का पंथ
हज़रत, अरे मुहम्मद को न भुलाओ।
उनका क्या, हम नारे जहन्नुम झेलेंगे। (शां)

इसमें संदेह नहीं कि शेख नूरुद्दीन एक उच्च कोटि के मुस्लमान संत थे, विद्वान थे और उन्होंने अधिकतर ज्ञान अनुभव से पाया, ग्रंथों से नहीं। उन्होंने कश्मीर की उपजाऊ धरती में इस्लाम धर्म का सही बीजारोपण किया। इस सिलसिले में उनकी मुलाकात सैयद समनानी के बाद उनके पुत्र मीर मुहम्मद हमदानी से हुई जिन्हें कश्मीर के मुस्लमान काफी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। सादात (कश्मीर के बारह में आ हुए इस्लामी प्रचारक तथा सूफी दार्शनिक) ने उनके धर्मनिष्णात व्यक्तित्व की धाक मान ली। परम्परा में शेख की हज़रत मुहम्मद साहब से स्वप्न में मुलाकात होने का भी वर्णन है। सादात की भाषा अरबी फारसी थी, जो जनसाधाएण में इस्लाम प्रचार में कम ही सहायक थी। इसलिए शेख का प्रभाव जन में अधिक था। इस सबको दृष्टि में रखते हुए शेख नूरुद्दीन के धार्मिक व्यक्तित्व में कोई अस्पष्टता या संदेह नहीं रहता और उसके पवित्र महत्त्व को स्वीकारा जा सकता है। पर यह भी ध्यातव्य है कि सादात तथा शेख के बीच मतभेद भी उपजा था। जिन्हें बडशाह ने बाद में सम्मान दिया उन्हें बीच में गलत फहमी के कारण कुछ देर के लिए क़ैद भी किया। (जोनराज की राजतरंगिणी) शायद इसका कारण यह हो कि जिस कठोर अनुशासन के साथ धर्मगुरु तथा शासक इस्लाम का प्रचार चाहते थे (क्योंकि यह नवीनधर्म वांछित गति से फ़ैल नहीं रहा था, ११-१२-१३वीं शती) उतना अनुदार शेख नूरुद्दीन जैसा प्रभावशाली कवि नहीं हो रहा था। वह तो शैव शाक्त योग हठसाधना सहजमार्ग तथा इस्लाम के सूफी रूप सबको समोता चला जा रहा था। उसने तो अपने जीवन को भी इस अद्भुत मिश्रण की प्रयोगशाला बनाया था। रोज़े केवल एक मास के होते हैं, उसने वर्षों रखे; मांस खाने का निषेध नहीं, उसने मांस का विरोध किया; प्राणाभ्यास को स्वीकृति नहीं मिली है, वह इस युक्ति को अपना साधन

बनाता रहा; परिवार त्याग की राय नहीं दी गई है, वह तो परिवार को ईश्वर के पास वापिस भेजने का आग्रह करता है। इसलिए आडंबर को पोषित करने वाली कविता उसकी नहीं हो सकती, उनकी हो सकती है जो उसकी परिपुष्टि किया चाहते थे। उनके लिए उसका शेखत्व अधिक महत्त्वपूर्ण है, कवित्व कम।

नुंद ऋषि

ऋषि वैदिक वाङ्मय में द्रष्टा कवि तथा अन्तर्ज्ञानी को कहा जाता था। कश्मीर में भी आदि पुरुष कश्यप ऋषि थे, पर हिन्दु पम्परा में ऋषि का जैसा अर्थ रहा वह मुस्लमान पद्धति में फिर थोड़ा सा बदला। स्वयं 'नुंद' अहमद अर्थात हज़रत मुहम्मद को पहला ऋषि मानते हैं, दूसरा हज़रत उवैस को, जो स्वयं मुहम्मद के शिष्य थे। अनुयायी नुंद को 'उवैसी' अर्थात सीधे मुहम्मद के ही शिष्य बताते हैं। कारण यह विश्वास है कि नुंद उन ही के आदेश के अनुसार धर्मप्रचार करते रहे। जो भी हो, नुंद को भी ऋषि कहा गया। 'ऋषि' ज़रूर आदर तथा प्रज्ञा का सूचक था, इसलिए नम्रतावश वे कहते हैं कि 'मैं ऋषि कहां हूं !' पर कई श्रुकों में अपने नाम के साथ यह विशेषण जोड़ने में संकोच नहीं करते :—'यही कर रहा विनती 'नुंद ऋषि' आपसे'

स्पष्ट है कि ऋषियों की परम्परा जैसी इस्लाम में कश्मीर में रही, नुंद ऋषि उससे जुड़े हुए हैं। इनका एक पूरा संप्रदाय तो नहीं, भक्ति तथा जीवन परिपाटी ज़रूर है। इन्हें करीब उसी तरह एक श्रृंखला में जोड़ा जा सकता है जैसे संतों के एक-दूसरे से दूर तथा कटे रहने के बावजूद उनकी परिपाटी में एक स्पष्ट लघुतम मिलता है। ऋषियों की इस परिपाटी को पारिभाषित करना चाहें तो कह सकते हैं वे कर्म से वैष्णव कवियों-से सकरुण दयाप्राण तथा जीवों में ईश्वर का रूप निहारने वाले थे। चिंतन से संत कवियों जैसे अक्खड़, मर्मभेदी व्यंग्य से तिलमिला देने वाले, सिद्धान्त पर समझौता न करने वाले थे। उनमें सूफियों का जैसा धार्मिक विश्वास था पर प्रच्छन्न प्रचार का दंभ वे नहीं पालते थे। उन्होंने जो प्रचार करना चाहा, वह उनकी कटुभाषिता के बावजूद हो गया।

कश्मीर की ऐसी ही मुस्लिम ऋषि परम्परा में (एक दंतकथा या कहें परम्परा के अनुसार) 'नुंद' के पिता सालार तेज़ को एक योस्मन ऋषि ने इस्लाम की दीक्षा दी। कहते हैं कि महमूद गज़नवी के साथ एक रामो ऋषि की मुलाकात हुई थी। खुद नुंद ने कुछ उल्लेखनीय ऋषियों की सूची सी बनाई जिसमें उवैस के बाद जनका ऋषि, पलास ऋषि, रोम ऋषि, मीरान ऋषि, का ज़िक्र किया। इन ऋषियों के कर्म तथा उपलब्धियों के बारे में फिर उन्होंने अलग-अलग पद भी कहे। इन पदों में इन ऋषियों के संयम, इंद्रिय निग्रह तथा बलिदान की भावना का ज़िक्र किया।

दंडकवन के 'जुल्कार ऋषि' ने माया
को था अपने से कोसों दूर भगाया !
था अन्न ग्रहण का भी तो उसे न बंधन

□

और वे जो थे 'रुम रिषी' हुए अतिपूजित
था किया स्वर्ग में स्थान जिन्होंने अर्जित

□

औ' वे हज़रत मीरान रिषी साहब तो
क्रीड़ा करते थे साथ नफ्स के, बस जो—
आचमन लिया करते कुछ जल बूंदों की—

□

वे पिछले ऋषि सच्चे ऋषि थे

□

पर कलियुग के ऋषि कपटी ऋषि (श-शे)

इस प्रकार ऋषित्व को उन्होंने ऊंचा स्थान दिया। इसे हर भक्त के लिए श्रेय बताया यद्यपि उन्हें इस बात का भान था कि आजकल ऋषित्व का ह्रास हुआ है। इसके साथ कोई ऊंचा मूल्य बंधा न देखकर वे कह उठे—

ये ऋषि करते यदि ऋषित्व का पालन
कर्मअश्रु से विगलित करते तन पाहन

नहीं कर रहे लेकिन ऋषित्व का पालन
ईर्ष्या और घृणा से घाल रहे हैं तन । (शां)

इससे स्पष्ट है जहां ऋषि परम्परा उनके समय में आगे बढ़ी वहां इसमें काफी दोष आए होंगे। इसमें संस्थावाद घुसा होगा, मठधारिता का भार इस पर पड़ा होगा। शेख नूरुद्दीन यह नहीं चाहते थे। यों तो कश्मीर में 'ऋषि' परम्परा की लोकप्रियता का अन्दाज़ा इस बात से हो सकता है कि आजकल हिन्दुओं तथा मुस्लमानों में कई सैकड़ों घराने ऋषि-नाम से प्रसिद्ध हैं और ऋषि शब्द देवत्व सम्पन्न सरल स्वभाव के पर्यायार्थ लिया जाता है। मगर यह बात निर्विवाद है कि नुंद ऋषि ऋषियों में, कश्मीरी के प्रसंग में, सब से महान थे।

—**डॉ रतनलाल शांत**

अनुवादक—अनुगायक

शंभु नाथ भट्ट 'हलीम'

जन्म १९२१ ई०। बी० ए०, प्रभाकर, साहित्यरत्न। 'बालयार' (१९६०) केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत। प्रकाशन (हिंदी) : लल्लेश्वरी (सस्ता साहित्यमंडल) ललद्यम (कश्मीर संस्कृति एकेडेमी) कश्मीर पर हमला, गोदावरी, शंकराचार्य, मन की बात, तूफान, चोर विद्यार्थी, साहस के फल, स्व० ठाकुर पुंछी के उर्दू उपन्यासों का हिंदी अनुवाद। (कश्मीरी) : रुत शहरी (अंग्रेजी के Fair Play का अनूवाद) बाबा फरीद के दोहे (पंजाबी से) संपादक संस्थापक : पंपोश (दिल्ली) कोशुर समाचार (दिल्ली)। आकाशवाणी के कश्मीरी विभाग के इनचार्ज। पता : ए-III/१०३९, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली।

शशि शेखर तोषखानी

जन्म : १९३५ ई०। एम. ए. (हिंदी, अंग्रेज़ी) पी. एच-डी.। प्रकाशन (हिंदी) : लल्लेश्वरी, थोड़ा-सा आकाश (कविताएं) सम्पादन : एक अपरिचित आकाश (राधाकृष्ण प्रकाशन)। अनूवाद : सथ संगर (अख्तर मुहीउद्दीन की कश्मीरी कहानियां) कहा था ऋषि ने (शेखनूरुद्दीन के कश्मीरी श्लोक)। हस्त उद्योग विभाग में प्रदर्शनी अफसर तथा Craft के संपादक। पता : ५, इंदिरा नगर, सोनवार, श्रीनगर।

अर्जुन देव 'मजबूर'

जन्म : १६२३ ई. । एम. ए. (हिंदी) । प्रकाशन (हिंदी) 'कोशुर समाचार' में लेख । कश्मीरी : अमन त जिंदगी, कलामि मजबूर, शेखनूरुद्दीन पर कई गवेषणात्मक लेख । अनुवाद : 'मेघदूत' कश्मीरी में Leaves of Chinar अंग्रेजी में अपनी कश्मीरी कविताएं, भारत प्रोतिभा (बंगला) में कश्मीरी कविताएं, 'कोशुर समाचार' में भी । सम्पादन : कोंगपोश (कश्मीरी) के सहकारी सम्पादक १६४७। कई साहित्यिक सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बन्धित। पता : ज़ैनपोरा, कश्मीर ।

बद्रीनाथ कल्ला

जन्म : १६३७ ई० । एम. ए. (संस्कृत), एम. ओ. एल. प्रभाकर बी.एड. । प्रकाशन : कश्मीरी शैवमत (कश्मीरी) (कश्मीर विश्वविद्यालय) कश्मीरी, उर्दू, हिंदी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी में अनेक शोधपूर्ण लेख, कश्मीर तथा अन्य राष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित। सम्पादक : मानसदर्पण (मानस चुतुश्शती समारोह समिति) सह सम्पादक त्रिभाषा कोश (केंद्रीय हिंदी निदेशालय) तकनीकी शब्दावली (कश्मीर विश्वविद्यालय) । सह-सम्पादक, कश्मीरी कोश, कश्मीर संस्कृति एकेडेमी । पता : गणपत यार, श्रीनगर ।

रतन लाल शांत

जन्म : १६३८ । एम. ए. (हिंदी) डीफ़िल्. (प्रयाग) । प्रकाशन : खोटी किरणें (कश्मीर संस्कृति एकेडेमी द्वारा पुरस्कृत काव्य संग्रह) रसूलमीर (कश्मीरी कवि का पद्यानुवाद) कश्मीरी : अछर वालनप्यठ कोह (कहानियां) त्रेबेननि (चेखव का रूसी नाटक अनूदित) सह सम्पादक : त्रिभाषा कोश हिंदी निदेशालय) तकनीनी शब्दकोश (कश्मीर विश्वविद्यालय) कश्मीरी कहानी तथा नाटक पर शोधपूर्ण लेख प्रकाशित । सह-सम्पादक : 'कश्यप', श्रीनगर (१६६५-६८) कश्मीरी अनवाद : आषाढ़ का एक दिन (राकेश) रीछ, शादी का प्रस्ताव, जयंती (चेखव) शाबाश अनारकली (सुरेन्द्र गुलाठी) ।

बेमिना डिग्री कालेज में अध्यापन । पता : ५५-बड़ीयारबाला, श्रीनगर-१

शुक – अनुभाग

अनुवादक (प्रथम)

शंभु नाथ भट्ट (हलीम)

(१)

जिसने (तत्व) ज्ञान का रहस्य पा लिया, उसको (प्रत्येक स्थिति से) जूझने और कसबल आज़माने की विधि आई,

वही दत्तचित्त होकर 'हर (सर्वतापहारी-शिव) अर्थात खुदा के प्रति भावार्पण करेगा।

जिसका मद (घमण्ड) चुक गया और खुदी (अहंकार-भावना) मिट गई, जो यह समझ गया कि मैं कोई नहीं अर्थात मेरा अस्तित्व नगण्य है और मेरे नाम की वास्तविकता क्या है ?

जिसने उस (उच्चतम सत्ता) का दर्शन पाया, उसके मन से दुई (द्विविधा)† मिट गई।

(ऐसी स्थिति में) कौन किसका गिला-शिकवा करे !

(२)

सहनशीलता ऐसी कठिन साधना है, मानो वज्रपात और चुंधियाती बिजली का सामना करना हो,

सहना भरी दुपहरी (मध्यान्ह) में घटाटोप अंधियारे में घिरा जाना है, सहिष्णुता पर्वत को कंधे पर वहन करने-जैसी दुर्गम प्रक्रिया○ है। यह ऐसा कठोर तप है मानो हथेली में आग थामनी हो।

चक्की के पाटों में से अपने आपको पीस कर निकालने-जैसी विषम क्रिया

---

†दय—घृणा (सं.)
○—अर्थात् क्रिया (सं०)।

है यह तित्तिक्षा…

(यों समझो कि) सहना एवं सब्र से काम लेना विषपान करना है।

(३)

मैं वाटिका को क्योंकर सींचू ? रेखा-ऐसी क्षीण जलधारा में नाव खेना सम्भव नहीं ! अर्थात् जीवन-रूपी वाटिका को पतली-सी जलधारा से कैसे सींच पाऊंगा – इसके लिए तो (दया-करुणा की) अपार जलराशि चाहिए।

कौन मिटा सकता है उस अमिट लेख को, जो भाग्य के ललाट पर— अंकित हो गया हो ? "करम गति कोउ टरै नहि टारै" ॥

(४)

यदि ऋषि ऋषित्व का पालन करते तो क्रिया के अश्रु (जल) से वे संग (पाषण) को पिघला देते। मगर ऋषि वास्तव में ऋषित्व का पालन नहीं करते, (उलटा) वे क्रोध, मत्सर और घृणा द्वारा अपना सर्वनाश करते हैं।

स्पष्ट संकेत है कि जिन लोगों ने ऋषि मर्यादा को अपनाने का व्रत लिया है, वे हैं तो सामान्य जन, किन्तु दीक्षाधारी हैं, ऐसा होने पर यदि वे ऋषित्व के नियमों का पालन न करके घृणा और ईर्ष्या में फंस जाते हैं तो उनकी साधना का बल निष्फल हो जाता है।

(यह बात सर्वविदित है कि कश्मीर में ऋषियों की विशिष्ट परम्परा को शेख नुरुद्दीन (नुंद ऋषि) ने ही फिर प्रचलित किया। और उसको प्राचीन मर्यादा के अनुस्यूत कर दिया।

सूफीवाद और आर्य मर्यादा का ऐसा सामंजस्य एवं समन्वय अन्यत्र अलभ्य है।)

(५)

दिन-भर सैकड़ों बार नमाजें पढ़ता रहा। रात जागरण करके बिताई।

यदि अब स्वीकारोगे, (तो सब साधना सफल होगी)। अन्यथा मेरी दशा ठीक उस श्वान की-सी है, जो भौंकता रहे और दर-दर भटकता फिरे।[1]

(साधना करने पर भी दैव की अनुकम्पा अनिवार्य है, तभी जन्म सार्थक हो जाता है।

(६)

(इस श्लोक में 'म्यै चय' शब्द के दो अर्थों को लेकर अर्थबाहुल्य और अर्थ-गंभीर्य पैदा किया गया है।)

१. यहां भी मिट्टी है और वहां की मिट्टी। इस मिट्टी को ही (मेरे लिए) गुलजार कर दे अर्थात इसी को पुष्पोद्यान में बदल डाल, यहां (इहलोक में) भी मेरे तुम ही हो और वहां (परलोक में) भी तुम ही मेरे हो। तुम ही मेरा (जीवन) बाग के समान फूलों से भर सकते हो। सब कुछ त्यागकर मैंने तुम्हारा ही आंचल थाम लिया है। मुझे तुम्हारा दीदार (दर्शन-साक्षात्कार) चाहिए।

(७)

(हे साधन) चित्त-रूपी घोड़े की बाग (लगाम) थाम ले। यह चंचल है। इसके लिए (हबसिदम-प्राणाभ्यास द्वारा) प्राण-वायु को बांधना होगा। तब कहीं शशिकला शिर (सहस्रार) से पिघल कर उतर आएगी। तत्पश्चात् शिव और शून्य का मेल हुआ समझो।

(नोट)—कश्मीरी की आदि कवयित्री लल्लेश्वरी का भी एक 'वाख'[2] किंचित भेद के साथ इसी तत्व को व्यक्त करता है। शैव मत की यह सुप्रसिद्ध उपासिका[3] योगाभ्यास की विभिन्न प्रक्रियाओं का पालन करती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि योगाभ्यास अथवा रियाज़त की यह प्रक्रिया उन दिनों प्रचलित थी और धर्म-भेद का इस पर कोई बंधन नहीं था। हिंदू हो या मुसलमान—सभी योग-साधना के समान पथगामी थे।

---

१. अगये—खबरदारी करता फिरे।

२. वाख-वाक्य (अर्थात श्लोक या पद)

३. अर्थात साधिका (सं०)

(८)

नफ्स (सांसों की राशि) वहीं से (दैव द्वारा ही) नपी-तुली मिली है। यदि यह भेद चीन्ह (पहचान) जाओ तो कभी तुमसे भूल-चूक नहीं होगी। सत्य (दैव) के पारावर में (प्राणाभ्यास की) डुबकी लगा दें। मान जाओ कि (अध्यात्म) रत्न तुम जीत लाए। अन्यथा हर सांस मौत का ग्रास है[1]…कब दम टूट जाए, कोई भरोसा नहीं।

(९)

आया था (सीधे) रास्ते से और गया भी सीधी राह से, (परन्तु) सेतु के बीचों बीच (आधी राह में ही) रात हो गयी। (ऐसी दशा में) जब जेब टटोली तो कौड़ी भी पास न पायी। नाव द्वारा पार होता किन्तु पार-तरावा क्या देता।

(कब जीवन की सांझ उतर आए और कब भवसागर से पार उतरना पड़े…यदि अच्छे कर्मों की थाती[2] पास न हो तो काम कैसे चले।)

(१०)

खुदा एक ही है पर नाम उसके लाखों हैं। घास का एक तिनका तक ऐसा नहीं, जो नाम-रूप विहीन हो और जो खुदा का नामस्मरण न करता हो।

उमरिया बस एक पखवाड़ा भर मान लो—(ऐसा मान कर ही नाम स्मरण करोगे तो जीवन का उद्धार होगा।) यों तो एक-एक मक्खी[3] तक रोज़ी के बिना नहीं रहती।

(उदरपूर्ति के लिए सभी प्राणी सारी-सारी उम्र प्रयत्नशील रहते हैं। परन्तु खुदा का नाम अल्पकाल में भी लो, तो जीवन सफल समझो।)

---

१. कुन्नु नफसुल ज़ाय कुल मौत—कुरान की उक्ति, अर्थात सब जीवों को मौत का स्वाद लेना होता है।

२. पूंजी (सं०)

३. पाठांतर-मछा=मछली (सं०)

(११)

मैं कहीं गया नहीं, फिर भी किसी को ढूंढ़ कर निकाला। लोहे की† सांकल (बेड़ी) से मैंने सिंह को बांध लिया।

नफ्स (प्राण) और शैतान (विषय-वासनाओं) को मैंने चतुराई से पाश बद्ध कर लिया, और

(जब यह) प्रतीति हुई कि (नफ्स और शैतान) निबद्ध हैं, (तब कहीं) मेरा त्रास मिट गया।

तात्पर्य यह कि भटकना व्यर्थ है। यदि रूह के शेर को संयम की लोह-जंजीरों से बांध दिया जाये तो एक स्थान पर बैठकर (अरूप-अनाम) दैव को ढूंढ़ निकालना संभव है। इसके लिए प्राणाभ्यास और विषय वासनाओं का दमन अनिवार्य है। तभी भटकना नहीं पड़ेगा और भव-भीति दूर हो जाएगी।

(१२)

कौन है जिसने मेरे घर-द्वार की अलपना पर कालिमा पोत दी ? लजीले चोर की मैंने परछाईं देखी।

पलक झपकने तक की छूट नहीं—आकर (बंधन में पड़कर) भागूं कैसे ! (मुझे तो) भाग्य से भाग कर जाने की कोई राह नहीं सूझी।

(खुदा का नूर) प्रज्वलित हुआ नहीं कि तूर का पर्वत जल कर राख हो गया।

(यह तो) सिंह शृगाल के भेस में चुप साधे बैठा है।

इस श्लोक में दैव—रहस्य जानने की जिज्ञासा निहित है। विधि के विधान से बच निकलने का कोई उपाय नहीं। जब दैव का जलवा (प्रकाश) प्रदीप्त होगा तो तूर जैसा कठोर पर्वत भी उसको देखने की ताब नहीं ला

---

† चमर का अर्थ चमड़ा उपयुक्त है। यही तो दुष्कर साधना है। (सं०)

सकता। वस्तुत: सिंह-रूपी आत्म-शक्ति गीदड़ की तरह दुबके बैठी है। उभर आए तो सबल शेर की तरह गरज उठेंगी।

(१३)

जो वचन दिया है वह पूरा कर दे। वह कार्य कर, (जिससे) तुम्हारी याद ताज़ा हो जाए†। (यह स्मरण हो आए कि मैं क्या हूं, जीवन क्या है और इस सब का धारक और तारक कौन है)।

भीतर तो तूने गधे को प्रवेश दिया—स्पष्ट है कि यह सार-संभाल कर रखी हुई केसर की फुलवारी को चट कर जाएगा।

वहां कौन छाती पर वार सहने को सामने आएगा, जहां (दण्ड के रूप में) नंगी तलवार की मार खानी होगी ?

(अच्छा है कि) मरने से पहले ही मर जाओ। तभी मर कर मर्तबा (आदर-मान) बढ़ेगा।

चिंतन की प्रेरणा देकर जीवनोद्देश्य पूरा करने का संकेत है इस श्लोक में। यदि मूर्खतावश जीवन की महकती केसर वाटिका को व्यर्थं गवां दिया तो कर्मों का लेखा-जोखा देने पर दण्ड का भागीदार भी बनना पड़ेगा। इसलिए पार्थिव मरण से पूर्व ही यदि ऐसा जीवन क्रम अपनाया जाए कि मरने का भय ही न रहे तो यथार्थतः मान-वर्द्धन होगा।

(१४)

व्यक्ति (बन्दे) का कहना है कि मेरी ही सत्ता (महत्वपूर्ण) है—(स्पष्ट है) कि ऐसी (ज़ात) के पास रत्ती भर अकल है न बुद्धि। इहलोक की जाति प्रत्येक की एक-सी है। (परन्तु) परलोक की जाति किसी की भी एक जैसी—नहीं।

---

† प्रश्न है कि वह तुझे कब याद आएगा ? (सं०)

सर्वशक्तिमान दई के मुकाबले में अपनी सत्ता की दावेदारी मात्र अहंकार है और इस प्रकार की अहं-भावना नितान्त बुद्धि-हीनता की सूचक है।

इस दुनिया में सबकी सत्ता एक-सी है। कोई बड़ा है न छोटा, कोई उच्च है न नीच। सबको जीवन का एक-सा वरदान मिला है, किन्तु आने वाले—(पर) लोक में हर व्यक्ति की कर्मनिधि अपनी-अपनी होगी। जिसने जो अर्जन किया होगा; उसी के अनुसार उसको प्रतिफल मिलेगा।

(१५)

प्रतिदिन सोना और चांदनी कमाता रहा। रोज लोग मेरी बन्दगी करते रहे। नित नए-नए कपड़े सिये, काटे और माप लेता-देता रहा।

अन्तत: मुझे (सच्चाई की) पहचान हुई। तो अपने आप पर लज्जा आई।

सांसारिक सुख-वैभव, बाहरी दिखावे और व्यर्थ के रूआब की निस्सारता को जतलाते हुए हजरते शेख फरमाते हैं कि अपनी भूल पहचान कर शर्मिंदा होना पड़ा।

(१६)

घुटनों पर दो हाथ टेकते हुए उठ खड़ा होता हूं। और जब बैठता हूं तो लाठी का सहारा लेना पड़ता है।

उस समय आकाश से भूतल पर आ गिरता हूं, जब बाल्यकाल की याद आती है।

जीवन की सांध्य बेला 'बुढ़ापे' का मार्मिक और शिक्षाप्रद वर्णन है। न हाथ अपने वश में रहते हैं और न पांव। उठने-बैठने तक की बेबसी होती है।

(और ऐसी दशा में) जब बचपन की किलकारियां स्मरण हो आती हैं तो भारी धक्का लगता है।

(१७)

हज़रत शेख आत्म-संबोधन करते हुए कहते हैं—

यदि तोबा (प्रायश्चित) करोगे तो भवसागर से तर जाओगे। तोबा (पाश्चाताप) ही अब तरणी (पार उतारने वाली नौका) है।

तोबा न किया तो जीवनोद्धार कैसे होगा ! यहां कड़ाके की ठण्ड और भीषण तूफान (झक्कड़) चल रहा है।

पश्चाताप को संसार सागर से पार करने वाली नौका कहकर यह दर्शाया गया है कि जीवन का उद्धार जब होगा, जब मानव अपनी कठोर और अनवरत साधना के उपरान्त भी खुदा के दरबार में नतमस्तक ही रहेगा, क्योंकि न जाने कब कौन-सी भूल हुई हो, जाने-अनजाने में— उसका निराकरण पश्चाताप के सिवा और है क्या !

(१८)

आप्तजन (दैव के भक्त) की विशिष्टता का वर्णन करते हुए हज़रत शेख फरमाते हैं :

फांसी पर चढ़ाया—क्यों नहीं मरा ? आग में झोंक दिया गया, तब भी मरा नहीं।

इसीलिए आरिफ (योगीजन) और आशिक (भक्तगण) रो पड़े। मन्सूर था तो मरा नहीं—(कोई और होता तो इतनी कठोर यातना को कैसे सहन करता !)

मन्सूर एक सूफी संत हुए हैं। आत्म-प्रकाश होने पर उन्होंने 'अनलहक' (मैं ईश्वर हूं) की घोषणा की। धर्मान्ध लोगों ने उन पर बेदीन (अधर्मी) होने का आरोप लगाया। उन्हें भीषण यातनाएं दी गयीं और अन्त में उन्हें सूली पर चढ़ाया गया। वहां भी उनके मुख से 'अनलहक' का ही नारा उभरा। पार्थिव मरण तो उनका हुआ; किन्तु अपनी अडिग आस्था और अटूट भक्ति-भावना के कारण वे अमर हुए।

आरिफों औहं आशिकों का रोना तो यही है कि हर कोई मन्सूर हो नहीं सकता तो क्या उसके प्यारों को सदा ही फांसी का फंदा और धधकती आग का ही सामना करना पड़ेगा ?

(१९)

मृत्यु का तीर (मारक-बाण) लगा नहीं कि बचने की कोई राह ही न रहीं। जन्म लिया तो मछली की तरह जाल में उलझ कर रह गया।

(जब) अन्तस् का मल (मनोमालिन्य) ही दूर न हुआ तो बाहर की धुलाई-सफाई से क्या लाभ !

कल को जब तेल की उबलती कढ़ाई में सह चमड़ी जला दी जायेगी (तब शरीर का परिमार्जन किस काम आयेगा !)

मनुष्य जन्म जाल में मछली की भांति उलझा रहता है। मृत्यु उसका अनुसरण करती है। ऐसी स्थिति में यदि अन्त:करण निर्मल न किया जाय, बाहर से कितना भी साफ क्यों न रहे, सब व्यर्थ होगा। मछली जलचर हो कर भी तेल की जलती कढ़ाई में विकृत होती है।

रूप तो वास्तव में रूह का संवर जाना चाहिए।

(२०)

खुमानी के पेड़ की उलझी हुई गांट-जैसे मेरे (वासनावृत) मन ! कितने ही परशु प्रहार किए थे तुम पर मैंने; किन्तु तू कभी फूटा नहीं।

(इच्छाओं और अभिलाषाओं की उलझन से तुम्हारा छुटकारा न हुआ।)

रे शठ। भरी दुपहरी में तू मुझे लूटकर भाग गया। और कुत्ते सी प्रवृत्ति वाले, फिर तूने मेरा पीछा कभी न छोड़ा।

विषय-वासना से लिप्त मन को कहीं पेचदार गांठ की उपमा दी है तो कहीं लूटने वाले ठग और पीछा न छोड़ने वाले श्वान की । उसमें अड़ने, ठगने और निर्लज बनने की वृत्ति प्रबल हो जाती है, स्पष्ट है कि अगर इन वृत्तियों का विरोध न हो पाया तो मनुष्य ऐसे निकृष्ट मन का दास बनकर बहुमूल्य जीवन मन खो देगा ।

(२१)

(मेरे) गोरे बदन पर मलिनता का दाग पड़ा । बाग के अंदर जो ज़ाग (कौआ) था, वह उसमें से निकल आया ।

आषाढ़ की गर्मी पौष और माह के शीत में बदल गई । बन्दरगाह पर से फाह †······निकल गई ।

जीर्णता के घाव क्या लगे कि शरीर का प्रत्येक अंग दग्ध हुआ । सारे बदन में जलन व्याप गई। पापों का पलड़ा भारी हो गया, ऐसे में उद्धार हो तो क्यों कर !

मीठा-मीठा खाकर अन्तर्मन काला हो गया (इन सब उलटे कार्यों से) अपनी हानि हुई । किसी को क्या दोष दूं ।

इस श्लोक में कर्मों के फल, जीवन के सदुपयोग और दुरूपयोग के परिणामों और श्रेयस व प्रेयस के भेद की ओर संकेत है ।

जीवन का पट साफ था । बुरे कर्मों से उसको मलिन बना दिया । देखते-देखते शरीर रूपी बाग से आत्मा-रूपी कागा उड़कर निकल भागा । यौवन की गर्मी जरा-अवस्था की ठिठुरन में बदल गई । समय का जहाज बन्दरगाह से चल पड़ा । जर्जरित शरीर से कुछ भी न बन पड़ा । गुनाह बढ़ गये । यह

---

† फाह शब्द का अर्थ अविदित है ।

शाह गोम नीरिथ हर मंदरय (पाठांतर)— मंदिर से मेरा राजा चला गया । (सं०)

सोचा ही नहीं कि प्रकट रूप से मीठी लगने वाली वृत्तियों से अंतर्मन काला हो जाता है ।

यह सब अपनी करनी का ही तो फल है । किसी पर दोषारोपण करने से क्या मिलेगा !

(२२)

निर्लज था, कितनी ही पटखनियां खाईं, कितने झटके सहे, (परन्तु) मद में इतना दबंग था कि खुमार (नशा) ही न उतरा। ऐसा पतित हो गया कि दुनिया भर में मेरी बदबू (दुर्गंध) फैल गई। जिस उमर (आयु) से प्यार किया उसकी बढ़ती हुई गिनती किसी भी काम नहीं आई ।

आरम्भ से ही उलटी राह पर चला । मदोन्मत ऐसा रहा कि बार-बार गिर पड़ने पर भी सुधि न आई । ऐसा तिरस्कृत हुआ कि मेरा अस्तित्व औरों के लिए दुर्गंध का कारण बना । ऐसे में उम्र ढल गई, बुढ़ापा आयाकिंतु वृद्धत्व भी बेकार गया । जीवन अकारथ गया ।

(२३)

कल-कला (जब मृत्यु-दूत) सामने आ खड़े होंगे और गले से लिपट जायेंगे तो तुम्हारे कर्म (आमाल) देखे जाएंगे और तुम्हारे नाम-धाम की वहां पूछ होगी ।

वह स्थिति आंधी तूफान और घनघोर घटा की होगी, जिसमें अजगर तुझ पर झपटेंगे । ऐसी दशा में यह पूछताछ होगी कि मेरी करनी (अमल) क्या रही है, मेरा नाम-धाम क्या है !

जीवन का अंत अनिवार्य है स्पष्ट है कि मृत्यु आने पर इस बात का अवश्य लेखा-जोखा होगा कि मनुष्य ने क्या पाया और क्या उसने खोया है !

□

(२४)

आंधी-तूफान और घने अंधकार वाली उस परिस्थिति में हम क्या करेंगे, जहां प्रीत के मारे हृदय विदीर्ण हो जाता है। जब वह कब्र, जहां अंधेरा है और जहां तक न कोई सूचना जाती है, न वहां से कोई सूचना आती है, अपनी आगोश (कोख) में समेट लेगी† तो मृत्यु के चंगुल से वहां कोई भी बचाने नहीं आएगा !

(२५)

इस दुनिया में हम आए थे साथी बनकर। जन्म बारी-बारी से लिया; किन्तु किसी-न-किसी का साथ सदा रहा, हमें चाहिए था कि इकट्ठे होकर सहयोग से काम करें, एक-दूसरे का हाथ बटाएं।

हमारी आंखों के सामने हमारे मां-बाप हमसे बिछुड़ गए। देखो तो हमारा दिल पाषाण-वत कितना कठोर है कि अपने बड़े बूढ़ों की विदाई देख कर भी हम जीवन-रहस्य को नहीं समझते और एकता एवं सहकार को अपनाते नहीं।

(२६)

आदि वही और अन्त वही। (खुदा अनादि-अनन्त है)। नदी के घाट (पनघट) पर उतरकर मैल दूर करो। अर्थात दैवानुग्रह के प्रवाह से अपनी आत्मा और काया को निर्मल बनाओ। करबद्ध होकर उसकी शरण में आओ, मन-प्राण से खुदा की बंदगी करो। संभव है कि दोज़ख (नरक) की आग से बच पाओगे !

(२७)

शिव हर स्थल पर रहता है, सर्व-व्यापक है। यह मत समझ कि यह हिंदू और वह मुसलमान है··· (हिन्दू-मुसलमान में भेद-बुद्धि पैदा न कर।)

---

† गले मिलेगी। (सं०)

यदि तू सुमतिमान (सयाना) है तो अपने आपको पहचान। आत्म बोध प्राप्त कर, वही साहिब (परवरदिगार-शिव) से तुम्हारी जानकारी है।

धर्मनिरपेक्षिता (सैक्यूलर जीवन-नीति) का यह मूल मंत्र कश्मीर के मनीषी संतों ने तब प्रचारित किया था, जब देश के अन्य भागों में इस भावना का कहीं प्रादुर्भाव नहीं हुआ[१] था।) इस उद्घोष में नुंद ऋषि और लल्लेश्वरी एक स्वर हैं।

(२८)

मृत्यु का और मृत्यु के विचित्र हेतुओं[२] का क्या किया जाये ! कितने ही अच्छे-भले (सबल-रूपवानों) प्राणियों को यह अस्त-व्यस्त कर गई। नए (मृत्पात्रों) में ज्यों जल पच जाता है, मृत्यु भी ऐसे ही सब प्राणियों पर हावी हो जाती है। जिस तरह दूकानदार अपनी दूकान बढ़ाकर चल देते हैं, ऐसे ही मौत आने पर प्राणपखेरू उड़ जाते हैं और शरीर निष्प्राण पड़े रह जाते हैं।

(२९)

सिद्ध पुरुष वे हैं, जो परोपकार में दत्तचित्त रहते हैं वे नित्य प्रति जलती आग पर सलिल डालते हैं। अशांति की आग भड़कने नहीं देते। ऐसे सिद्ध जन सोहमनास्मि (हमा-ओस्त) के सिद्धान्त को मानकर (संसार में) कार्य निमग्न रहते हैं। वे संसार में जन्म लेकर भी भव-बंधन से मुक्त होते हैं। उनकी दिन-चर्या दैवार्पित होती है, इसीलिए वे लिप्त होकर भी अलिप्त रहते हैं।

(३०)

जन्म लेकर मैंने क्या किया, (कुकृत्यों द्वारा) अपने मुंह पर कालिमा ही पोत दी और पापों को दुर्गन्ध मुझसे लिपट गई। पाप कर्म करने का आदी हो गया। (वास्तव में) मैं ही बुरा हूं और सब नेक (पुण्यकर्मी) हैं।

□

---

१. यह श्लोक लल्लेश्वरी रचित माना जाता है। उसमें थोड़ा भाविक अन्तर है।

२. उपयुक्त अर्थ—'विकारों'। (सं०)

विगत ३० श्लोकों का क्रमिक पद्यानुवाद

अनुगायक द्वितीय

रतनलाल शांत

[१]

वही जगत-संघर्ष में जुटे, जो पाए ज्ञान,
जाने वही, चित्त से जो हर को दे सम्मान,
जिसका मिटा 'स्व' छूटा खुद ही मद अभिमान,
वह कह उठे-कौन मैं हूं क्या है मेरा नाम ?
प्रभु के द्रष्टा के मन बैर नहीं रहता,
वह गाए गुण किसके, किसका करे गिला ?

[२]

सहन कठिन है जैसे सहो कड़कती बिजली,
सहन कठिन है उजले दिन में अंधकार।
सहन कठिन है कांधों पर ढोना पर्वत,
सहन कठिन हैं बीच हाथ लेना अंगार।
सहन कठिन है तन पर चक्की चलवाना,
सहन कठिन है कटु विष का जैसे आहार॥

[३]

तन की यह वाटिका सींच लूँ निष्फल है दुराशा है।
गढ़ूँ अगर मैं पत्थर की—
ऐसी नैया कहां चले ?
कोई नहीं हटा सकता
नियति का लिखा नहीं मिटे।

[४]

ये ऋषि करते यदि ऋषित्व का पालन
कर्मअश्रु से विगलित करते तन-पाहन
नहीं कर रहे लेकिन ऋषित्व का पालन
ईर्ष्या और घृणा से घाल रहे हैं तन।

[५]

दिन दिन भर शुक्राने की शत बार नमाज़ें पढ़ लीं
रातें मैंने मगर गुज़ारीं निद्राहीन जगावे में
अब भी मेरे प्रभु तुम मुझको नहीं करोगे अगर कबूल
कुत्ता जैसे मालिक के, मैं भागूँ तेरे पीछे।

[६]

एक तुम्हीं हो मेरे यहां और वहां भी
प्रभु मेरी माटी को कर देना उपवन
सब को त्याग तुम्हें मैंने थामा केवल
कब होंगे प्रभु मुझको अब तेरे दर्शन ?

[७]

मन का तुरंग न भागे इसकी बाग संभालो
बसमें करो, उड़ा जा रहा प्राण पवन
शशि की कला शीर्ष से पिघल-पिघल बहेगी
शिव और शून्य यों एक होंगे, होगा मिलन।

[८]

प्राण मिले हैं हमें माप कर जोंख कर
यह जो पहचानो तो मृत्यु न व्यापेगी
सत्य की नदी में पैठो, मणि खोजो रे
वरना सबको स्वाद मौत का चखना है।

[९]

सीधे पथ से आया सीधी राह से गया
बीच सेतु के चलते चलते रात हुई
जेब टटोली हाय नहीं थी रत्ती कौड़ी
तरूं नाव से पार, मगर दूं क्या खेवाई ?

[१०]

एक खुदा है लाखों उसके मगर नाम हैं
नाम उचारे उसका तृण की पत्ती पत्ती
सारी उम्र गिनो जैसे हो पक्ष एक
बिना अन्न के क्या है कहीं एक भी मछली ?

[११]

कोई खोजा मैंने, मैं यद्यपि गया न कहीं,
बांधा मैंने शेर कि ले चमड़े की सांकल
छल से बाँधा प्राण और शैतान को
सुखी हुआ मैं तभी मिला मन को संबल ।

[१२]

मेरी चित्र-मंडोली किसने की कजरारी ?
चोर लजालू की देखी है मैंने छाया
भाग चुका वह अब मैं काहे आंखें मल लूं ?
मुझे भागने को खुद भी तो मिला न ठाँव
प्रज्वलित वह कोहेतूर भी राख हो गया
टोही शेर छिपा, सियार की मुख-माया !

[१३]

प्रण जो किया उसे तुम पूरा कर लो जी
भूले वादे आएंगे भी तुम को याद ?

यहां गधा ले गए बिना सोचे जो तुम
यह केसर की बगिया कर लेगा बर्बाद
कौन वहां, तेरे बदले, झेले, मूरख !
अपनी छाती-कांधे पर तलवार-धार ?
मरने से पहले तुमको मरना होगा
तभी बढ़ेगा रुतबा तेरा मरणपार ।

[१४]

अहंकार में डूबा चिल्लाए 'मैं हूं'—
जो भी, उसमें बुद्धि का है नहीं लेश।
यहां तो सभी का समान है व्यक्ति मगर
उधर नहीं है व्यक्ति अहं या काल-देश ।

[१५]

सोना चांदी जीवन भर मैं रहा कमाता
सदा कबूला मैंने जनजन का अभिवादन
बस, मैं सीता रहा काटता और मापता
लज्जा पड़ी उठानी ज्योंही हुआ मैं चेतन ।

[१६]

अब तो उठते, घुटने टेकूं
और बैठते लकड़ी साधन
नभ से भूतल पर आ गिरता
याद जिस घड़ी आता छुटपन ।

[१७]

जल्दी तोबा करलो तो भवसर को तरलो
तोबा ही है पार कराने की नैया

तोबा बिना उबर कैसे पाओगे, मन !
वहां कड़कती ठंड चुभे, डस जाय. पछैया।

[१८]

सूली पर उसको लटकाया मरा नहीं
झोंक दिया लपटों में लेकिन जला नहीं
इसीलिए तो संत औ' भगत रोए थे
वह तो था 'मंसूर' कभी जो मरा नहीं।

[१९]

मारक तीर लगेगा तो फिर घाव न भर पाएगा
जन्म लिया तो मछली जैसा हाय फंस गया जाल में
भीतर का मल निकल जाए तो बाहर से धोना क्या ?
वहां जलेगा चाम, तलेंगे जैसे उबले तेल में।

[२०]

प्राण मेरे तू कड़ी गांठ है खूबानी के पेड़ की
कितना तुमको कूटा पीटा, तुमसे अहं नहीं छूटा
छलिया ! मोहित मुझे किया दिन ढले ही मुझे छोड़ा
अहंकार ! मेरे पीछे तू कुत्ते जैसा लगा रहा !

[२१]

मेरे गोरे तन पर कैसा दाग़ लग गया
छोड़ चला कौआ, उपवन का रखवारा,
घाम हाड़ की, पौष माघ की शीत हो गई
जीवन मंदिर से राजा ही चला गया
जर्जर घायल, कदम कदम पर है कठिनाई
पाप बढ़ गए मेरे, कैसे उबर सकूँगा ?
मधुर और मीठा खाया, कटुता न गई
दोष किसे दूँ यह है केवल मेरी खता।

[२२]

नग्न पड़ा था, हिला गया कोई मुझको, मैं लुढ़क गया।
भंगड़ था मैं, उतरा लेकिन नहीं नशा मैं बहक गया।।
रद्द हुआ दुनियां में जग की बदबू मैंने गही हाय;
किसी काम की मेरी प्यारी रही उमरिया नहीं हाय।।

[२३]

काल करेगा सामना और गले मिलेंगे।
जाचेंगे फिर कर्म मेरे और मेरा नाम।।
अजदहे तिमिर अंधड़ में मुझ पर झपटेंगे,
तभी तुलेंगे कर्म मेरे और मेरा नाम।।

[२४]

जब होंगे आंधी अंधकार
फट जाए हृदय हो प्यार नहीं
बेसुध हमें कब्र ले बैठेगी
फिर तो मृत्यु से कोई त्राण नहीं।

[२५]

जग में सब आए थे संगी साथी से
चाह रहे थे मिलकर साथ निभाना है
माता पिता मरे यह देखते रहे
हाय! हमारा पत्थर हुआ कलेजा है।

[२६]

अव्वल वही और वही है अंत में
नदिया पर जा मैल छुड़ाकर आओ रे
उस ईश्वर को हाथ जोड़कर सदा नमो
यों दोज़ख की आग से उबर जाओ रे।

[२७]

थल थल पर है एक उसी शिव का निवास
भेद कोई मत हिंदु मुस्लमां में जानो
खुद को पहचानो हो यदि बुद्धिमान
ऐसे ही अपने साहिब को पहचानो।

[२८]

करें मौत का क्या, मृत्यु के फेर निराले देखो
कैसे कैसे जीवन इसने जड़ से ही डाले उखाड़
जैसे जल मिट्टी के कोरे भांडों में पच जाता है
बंद किए पट और बढ़ा दी बनियों ने जैसे दूकान।

[२९]

जिनका मन हो लगा सदा ही परोपकार में
सहन करें तन पर, जल डालें ज्वाला पर,
'सोऽहं' का कर जाप ध्यान दें रोज़गार में।
बार बार वे जन्म न लें फिर जग-असार में।

[३०]

जन्म लिया फिर केवल काले कर्म किए
यहां पाप की तेज़ मगर दुर्गंध मिली
आदत डाली यहां पाप के कामों की
शेष सभी तो सज्जन, मैं ही दुर्जन हूं।

★★★

अनुगायक तृतीय

डॉ० शशिशेखर तोषखानी

(१)

गर्म सलाख छुआई मुझसे पेट ने
क्षण-क्षण मुझसे रहा घूस ही मांगता
जिसे याद कर कृश मेरा यह गात हुआ
वही एक प्रभु तो है स्मरण योग्य यहां
आया था दुनिया में बन मेहमान, पर
गाय-ढोर-सा ही पथ रहा फलांगता।

(२)

मैं तो था मेहमान, जगादी लालसा
गौ-बछड़ा सम्मुख रख किया निहाल-सा
प्रकृति अरे दुल्हन, दुल्हा है प्राण यहां
कौन नहीं है ख्वाहिश में हैरान यहां
खाने को घी-दूध-दही हो, गोश्त मिले
तो तू है रसोइया, मैं मेहमान यहां
प्राण निकलने का पर जब अंदाज हो
तो रसोइया कौन और मेहमान कहां?

(३)

गिरि-शिखरों पर भी क्यों न बुभुक्षित जा भटकें
पर तिरे पत्थरों से किसको कुछ कभी मिला?
नरकाग्नि, बीच, सब कहते हैं जलना होगा
जो यहां राख हो चुका, वहां क्या जले भला।

(४)

गुदड़ी से ही रहे लिपट कर जो सावन-आषाढ़ में
भला टिकेगा कहीं पूस की कठिन हवा की मार में।
नंगे तन जो निकले हिम में, वर्षा तप तूफान में
अपना दुखड़ा रोने की कब फुर्सत उसे जहान में
भूखा जो रह जाए फसल की ऋतु में भी शरदान्त में
नाम गिनाये कौन भला उसका मर्दों की पांत में ?

(५)

मिले अगर (प्रभु से) तो यों बो डालों बीज मिताई का
पानी से क्या हृदय-रक्त से करो उपाय सिंचाई का
मीत न जो दीखे क्या होगा हाय हृदय-सम्पात का
कहां अंत है किन्तु मीत के लिये मीत की बात का ?

(६)

मंहगे में बेच कर जो सस्ते में पाया
पर डाल नमक मैं सब दरिया में आया
मीठी वाणी में औरों को फुसलाया
दूं किसे दोष,—खुद मैंने धोखा खाया !

(७)

घन-वन के भीतर विचरण करूं तप करते
करते यदि आहार साग का, पातों का
उमड़े हुए क्रोध को अपने वश करते
ऐसा जो करते तो हम क्योंकर करते !

(८)

वह अपना पाप-निवारण आप करेगा
जो मेरे कहे हुए पर ध्यान धरेगा

यह देह छोड़ कर निश्चय वही तरेगा
कारण समझेगा जोऔ' क्रिया करेगा !

(९)

सीन्ह षड़वन लिये, तब उगी शशिकला
प्रकृति मेरी पवन में समायी अरे !
इश्क की आग में भून डाला जिगर
इश्के-माशूक की है दुहाई अरे !

(१०)

नौका से जाऊं या पैदल ही धाऊं ?
—इस दुविधा में फंसकर तू कहां टिकेगा ?
यदि एक दिशा में होगा तू पथगामी
तो दूर पंथ हो कितना—नहीं थकेगा !
काटेगा जब तक तू न अरे भव-बन्धन
तब तक तू कैसे सुखी रहेगा, ओ मन ?

(११)

हो सकता है तो भूखे को भोजन दो
नंगे से उसकी जात कभी मत पूछो
दो—और हज़ारों गुणा सवाब बटोरो
होगा न अकारथ ऐसा अगर करो तो !

(१२)

कच्चा—पक्का खा अपना पेट भरे जो
बस एक वस्त्र में ही निर्वाह करे जो
घूरे की ढेरी पर दिन जो कि बिताये
उस 'नुन्दे' से वह कौन कि होड़ लगाये !

(१३)

खुदा सदा था और खुदा ही सदा रहेगा
नहीं किसी पर भी निर्भर बस एक वही है
हर प्राणी को वही जीविका देने वाला
उसे याद हम, पर हमको वह याद नहीं है
बन्दे, पापों में रत रहकर क्या पायेगा ?
कोई नहीं कब्र में साथ चला आयेगा !

(१४)

किसी को यहां भी वहां भी दिया सब
किसी को न कुछ भी यहां या वहां
किसी को दिया हार यदि हीरकों का
किसी को उजाला भी तममय हुआ !

(१५)

जो कि यहां था, वही वहां है
सभी कहीं उसका अधिवास
वही पदातिक, वही रथी है
छिपा सब कहीं करता वास ।

(१६)

क्या कभी मीत को मीत भूल पायेगा—
कोई अमृत का घट भी क्यों न पिलाये ?
क्या कभी जाल में पक्षी फंस जायेगा—
जब तक बहेलिया दाना नहीं खिलाए
जो नहीं पराये को भी अपना समझे
उसका तो सुत भी उसका हृदय दुखाये !

(१७)

जागते हुए भी जैसे मुझको नींद पड़ी
कब--'नफ्स' मुझे कल लेने देता एक घड़ी
यह तो हराम की बस, हलाल की कब खाये—
उसकी दरगाह में पर यह कहां सुहाये ?

(१८)

लोभ हुआ मित्रों के बीच रहूं अपने
आ भटका पर तप्त धातु की चादर पर
स्वजनों में ? लांछनों-बैरियों बीच रहा
पत्तों को सींचा, मूलों को दिया कतर ?
शोभा कैसी ? लोभ दृगों का गया नहीं
सभी चले, पर उस तक पहुंचा बिरला ही?

(१९)

वन-साग-पात—स्वादिष्ट जिसे हो व्यंजन
निश्चय ही उसको गिना जाएगा सज्जन !
दुनिया में वह आया तो क्योंकर आया
पय नहीं जो कि पानी का करता मंथन
सम जिसे यहां हो अपना और पराया
निश्चय से भव-सागर तर जाए वह जन

(२०)

रोगी को दारू ज्यों कि पथ्य व्याधि को है
तू लेगा रे यदि पथ्य, मरेगा नहीं कभी
तू सुकृत् छोड़ कर किन्तु रहेगा यदि निष्क्रिय
उल्टी गति होगी औ', सुधरेगा नहीं कभी

(२१)

जो आर्त्त उसी का तो है चेहरा काला
पड़ता है उसको खड़ा द्वार पर होना
उसका अपना भी बनता विमुख पराया
पीतल हो जाता है रे उसका सोना।

(२२)

सब कहीं मुझे इसने अपयश दिलाया
है पेट मुझे जिसने लज्जित करवाया
मदमाते कुंजर-सा यह सांकल तोड़े
वह अनिकेतन, जो इसको वश कर पाया।

(२३)

राग-रंग में था कि संग में
कुल न काम आयेगा !
कुल अंगों में नहीं मकरध्वज-सा—
बल भर जायेगा !

नहीं किसी के माथे पर कुल—
लिखा नज़र आयेगा
अरे कुल कहां ? बस अमल में यहां
तू दृढ़ता पायेगा !

(२४)

मेरा केसर भी हाय घास का ढेर हुआ
कांजी खट्टी मेरी मिश्री की डली हुई

सब व्यर्थ गया मेरी मिश्री, मेरा शक्कर
रह गये जरा के चिन्ह—समय का फेर हुआ !

(२५)

मिट्टी का पात्र जगत का मधु से भर डाला
ईश्वर यह कैसी मति ? तुमने क्या कर डाला ?
यह मधुर खिलाया तुमने क्या मिश्री जैसा
मन रमा यहीं पर रहा अरे जिससे ऐसा
(भूला मैं) आखिर सुला कब्र में आयेंगे
सब खाया-पिया अरे वापस करवायेंगे !

(२६)

मूढ़ों को देख चढ़े तुरग पर मैंने
पर सांय-सांय है शांत जनों के घर में
है जुड़ा पेट-भर अन्न न सज्जन पाते
दुर्जन जीभर कर मांस-पुलाव उड़ाते ।

बाज़ों को देखा मैंने कान खुजाते
कौए भी गोरे राजहंस बन जाते
दुनिया को लेकिन साथ कौन ले पाया
बस भला-बुरा ही सब ने नाम कमाया
मैं अज्ञानी, कब याद रहा कुछ मुझको
चेता न समय पर, मैंने दांव गंवाया ।

(२७)

दुनिया के इस सजे-धजे बाज़ार में
मैं केवल आहार देखकर मंडराया
आग लगा दी गठरी में शैतान ने
मुझे चोर-सा नहीं भागना भी आया

व्यर्थ लोभ उपजा इस हाट-बज़ार का
इस संसार बीच जनमा, दुख ही पाया ।

(२८)

पीने को यदि अमृत का घट भी पाओ
तो एक घूंट में पेट न भरना अपना
इस तन की रज को तो है आखिर तपना
कुछ युक्ति करो ऐसी उसको सहलाओ
उबरेगा ज्ञानी, मूर्ख फंसेगा (मग में)
है घटाटोप घनघोर अन्धेरा जग में !

अनुगायक (पंचम)

बद्रीनाथ कल्ला

(१)

बीच छलकती नदियों के गुम होगे तुम इक सोते सम
बीच तस्करों के खो जाओगे इक साधू सम
और अनपढ़ों में खो जाओगे एक पंडित सम
घिर जाओगे राजहंस सम तुम कौओं के बीच ।

(२)

आज करोगे अर्जित कुछ, अन्त में कैसे होगा
आज करोगे कुछ तो हाथ लगेगा तेरे
दाने जो बोओगे जीवन में काले या गोरे;
काटोगे उस लोक में उनकी भरपूर फसल
छोड़ छाड़ के घरबार मिलेगी चेतन देह तुझे
बस तभी "नुंद" औ सत्कर्म लगेंगे तेरे हाथ।

(३)

रहा प्रलय आदिकाल से घात में मेरी
छुआ उसे बन महाबली
दिया काट चन्दन और सींची कांटों की झाड़ी
बना 'मारखोर' और स्वयं हो गया शैतान[1]
दस बान्धव पाले पोसे पर साथ चला न कोय
जब मनन किया यह सब कुछ, तो पीटी अपनी देह ।

---

१. मृतभोजी शैतान मेरे पीछे पड़ा (सं०)

(४)

सहे नलाई   वह ही बोये जो बीज स्वयं
ढूंढ़-ढूंढ़ काटे वह ही बेकार   मवास[१]
बोये जो बीच वसन्त काटे[२] वह बीच शरद
करे स्वर्ग-प्रवेश बन स्वयं वही व्यापारी।

(५)

अन्दर का क्रोध   तुम यदि त्यागो नाहीं
और करो श्रृंगार बाहिरी   काया का
विषयों का   अन्त्यमल[३] चाहो यदि तुम
बेकार समझो इस काया के व्यापार सभी तू मूरख।

(६)

सत्य कहे देह कांपे तेरी पत्तों सम
झूठ कथन में लागे   तोहे रस
छोड़   मुहम्मद   गह शैतान[४]
प्रभु की देन   छिपेगी किस से ?

(७)

बैठ स्वयं   तुम महलों में
दोगे स्थान अतिथि को कैसे
चन्दन देह जब काटे तरखान
क्या दोगे तुम विचित्र सृजक को ?[५]

---

१. उपयुक्त अर्थ है 'कदन्न के अनिष्ट कण'
२. '' '' 'तोले'
३. '' '' 'अंतर्मल'
४. ...गहोगे शैतान को
५. उस विचित्र सर्जन को (सं०)

(८)

हो न सको अन्तर्मुख तो मारे जाओगे
मिले दर्शन बस कामगारों को ही
देखा मैंने आसक्तों को जाते उस ओर स्वयं
होते हैं अनुरक्त स्वयं पार क्रिया के पार[१]।

(९)

आदि अकार[२] बस एक है अल्लाह
आदि अन्त वही अन्तहीन
'ब' को जानो रसूल अल्लाह का
गहे प्रलय में[३] में तेरा हाथ।

(१०)

काग शिकार सिखाये शाह को !
सोम[४] गिरे पर दीप करे क्या[५] ?
दीप करे कब चन्द्र प्रकाशित ?
कैसे दे शिव, गति, अयोग्य को ?

(११)

मन का चोर तुझे काटे है
प्रति दिन चाहे रिश्वत देना
जाना है पर-गेह् अन्त में
माया रूपी जीवन के लो आये है मेहमान।

---

१. प्रिय कह रहे कि अब आएगा यार
२. अर्थात 'अलिफ'
३. अर्थात 'कयामत'
४. " 'मदिरा'
५. अर्थातर—मच्छर को क्या लाभ अगर दीपक जल जाए (सं०)

(१२)

मन ने मारा हाथ
छिपा रहा अन्धकार के बीच
काश लगे वह मेरे हाथ
काट गला छुर्रे से लेता ।

(१३)

किसे न पूछा कहां न ढूंढ़ा
ज़ीजीरों में बांधा शेर[१],
मन औ भ्रम[२] को छल से बांधा
बांध दंड से मुक्त हुआ[३] ।

(१४)

सत्य जो माने पांच ग्रहण कर
काया-शमन समझ निमाज़
शिव और शून्य करे तू एक
कल्प-वृक्ष सम वही निमाज़[४] ।

(१५)

शंख बजे ज्यों जागे आग
गुम्बद गूंजे अनहद् नाद[५]
सज्जन सुने इशारों में
दुर्जन सुने न ढोल बजाय ।

---

१. चमरवि अर्थात चमड़े की ज़ंजीर से (बहुत कष्टसाध्य है संयम)
२. उपयुक्त अर्थ—'शैतान' ।
३. मुझे फिर लाभ हुआ, मेरा यही 'प्रेय' था ।
४. वही सिद्धि है, वही नमाज ।
५. 'दुन-दुन' शायद ध्वनि सूचक शब्द है । 'अनहद नाद' लाक्षणिक अर्थ होगा । —(सं०)

अनुगायक (तृतीय)

अर्जुनदेव 'मजबूर'

(१)

कौन वहां गया और किसने देखा
वहां पहुंच कर भी रह गये कितने ।
जिसने जितने कष्ट सहे अपने शरीर पर
उसने उतना सरल रास्ता अपना पाया ।।

(२)

साहिबा ! ऊंचा तेरे सम ना कोई,
ना जानूँ अन्यथा करू तुझको प्रणाम ।
चित्त चन्द्र की आज अवस्था पाऊं
अनुग्रह करलो मुख तुम से ना फेरूंगा ।।

(३)

जिसको तुम दो उससे कौन छीनकर ले ले ?
उसका क्या करे घड़ी और क्या महूर्त्त ?
जिससे तू ले छीन कौन दे सके उसे ?
उसमें हो योग्यता या न हो ऊंची जात ।।

(४)

अनुग्रह तेरा है फूलों के वर्षण सा,
विष में होगा उससे मिश्री का सा स्वाद ।
तेरा हो अभिशाप, हमारा क्या बस है,
छुरी और मास में क्या हो सकता विवाद ?

(५)

लाख नामों वाला वह एक खुदा है
उसका है गुणगान कर रहा तिनका तिनका।
यह जीवन तुम मानो क्षणभंगुर है,
भोजन हीन एक मक्खी भी नाही।

(६)

कण कण को दी प्रभु ने शोभा,
आत्मा जनम मरण हीन है।
बख्शा प्रभु ने गुण मानव को,
पंडित हो तो खुद पहचान ॥

(७)

ईश्वर था तो वही होगा,
उसका अन्त कभी न होगा।
सब का अन्नदाता वही
हम हैं उसको याद वह पर हमें नहीं है ॥

(८)

ध्यान करोगे तो ध्यान जागेगा मन में
'अल्लाह' तेरे मन में विकसेंगे।
जहां जाओगे तुम पर सदा रहेंगे खुश,
तेरे मन में उपजेगा फिर अल्लाह हू ॥

(९)

अल्लाह को तो बार बार जप रे भाई !
जग की आसक्ति कभी तू याद न कर।
दिन और रात उन्हें तू याद किया कर भाई
जीवत हो तो कभी न मर ॥

(१०)

एक ही मां बांप की संतान
में क्यों जनमा द्वैतभाव
मुसलमान और हिन्दु सभी पर,
दयादृष्टि कर सदा प्रभू ॥

(११)

मेरे मन के सभी शत्रुओं को,
यूं ही मुझको सहना पड़ा।
विस्मृति में मैं खो बैठा,
कब होगे बंदों पर तुष्ट, ख़ुदाया।

(१२)

डंडक वन के जुल्का ऋषि ने
तृण पर ही निर्वाह किया।
अन्न नहीं खाया बन्धन ही छोड़ा,
कब होगे बंदों पर तुष्ट, ख़ुदाया !

(१३)

प्राणाभ्यासी ऋषि पुलस्त्य (पलास) ने
पेड़ बेद का दिनभर चाटा।
क्षणभर भी ईश्वर को न भूल—
कब होगे बंदों पर तुष्ट, ख़ुदाया !

(१४)

उस महान रुम ऋषि (लोमर्षि) ने भी
स्वर्ग में पाया मुक्ति धाम।
शोभित उनके चिथड़े होते
कब होगे बंदों पर तुष्ट, ख़ुदाया !

(१५)

वह महान मीरान ऋषि था
अपने ही जीवन से जूझा।
जल की बूँदे पी पी करके
कब होगे वंदों पर तुष्ट, खुदाया !

(१६)

केवल कहां जाओगी पथिका,
तज कर निज गृहभार।
किसे भार सौंपेगी पापिन !
मेरे खुदाया ! पाव निवार।।

(१७)

गुतरूप से परायों का चित्त प्रसन्न करले,
छिपकर लेजाओ सिन्धु से पार।
तुम बिन हमें कौन कह दे,
रे खुदा ! मेरे पाप निवार।।

(१८)

घने जंगलों जैसा छाया अंधियारा
सेतु नहीं जा सके न पार।
तटस्थ रहे तू, कौन कर मेरा फिर पकड़े?
रे खुदा ! मेरे पाप निवार।।

(१९)

पाखंडी बनकर मैं कितना क्रूर हुआ
नूठन ढूंढी मैंने तो कुक्कट समान।
गेह त्याग कर — परगेह खोजा
रे खुदा ! मेरे पाप निवार।।

(२०)

सुग्गा भागेगा पिंजरा जाएगा भूल
मैं हूंगा रे पड़ा मचेगा हाहाकार।
'आरवल' पुष्प सम देह शीतल होवे,
रे खुदा ! मेरे पाप निवार॥

(२१)

जीवन अस्थिर प्राण भी अस्थिर,
चित्त भी अस्थिर अस्थिर सार।
इन पदों का चिंतन सही हो,
रे खुदा मेरे पाप निवार॥

(२२)

पहले निकलें प्राण, लोभ फिर जाएगा,
अलग अलग दो के पथ होंगे, फिर शून्य रहे
जैसा बोवोगे वैसा ही करोगे,
रे खुदा ! मेरे पाप निवार।

(२३)

क्रूर कल्कि काल में भी,
शुभारंभ से हुआ मैं पार।
नुन्द की विनती है यह,
रे खुदा ! मेरे पाप निवार॥

(२४)

तू ही सकल कारणमय है,
ढूंढा तुझे मैंने अणु अणु में।
सजदा दूं तुझे पांच वक्त पर,
दयालु ! तुम हो मुझे स्मरण।

(२५)

निर्गुण तू दर्शन यहां दे,
स्मरण करता हूं तेरा नाम।
विमान से कैलाश चढ़ा दे[1],
दयालु ! तुम हो मुझे स्मरण।.

(२६)

वह सकलों का है पैगम्बर,
व्यक्त किया आदि से रहस्य तूने।
शुद्धमन से तूने स्मरण किया है,
दयालु ! तुम हो मुझे स्मरण॥

(२७)

मुझे तेरा ही आदर है,
छोड़ा मान तेरे लिए मैंने।
मुझे तू भक्ति–कारण कर दो,
दयालु ! तुम हो मुझे स्मरण॥

(२८)

भव में बोया विष ही मैंने
अतः ढुंढ़ा वन आदि से।
प्रकट होकर मुझे पालो
दयालु ! तुम हो मुझे स्मरण॥

(२९)

प्रतिदिशा में कण कण में
झुकते तुम्हें सकल लोग।
मेरे शिष्यों का सहाय्य कर,
दयालु ! तुम हो मुझे स्मरण॥

---

१. हे भगवान मुझे पहुंचाये कैलाश (सं०)

(३०)

उस डंडक के ज़ल्का ऋषि ने
'ऋछ' फल का सेवन किया ।
पूर्ण भक्त वही मुक्त था,
वैसा वर दे देव मुझे ॥

(३१)

बलि जाऊं उस पैगम्बर पर,
जिसके युग में अनुग्रह ही का ही राज है।
कल जब मुझे प्रलय में बुलवायेंगे,
नज़रें उसकी ओर सिर्फ आशा में होंगी ॥

(३२)

काम क्रोध लोभ मोह अहंकार,
नरक की आग की लपटें हमको तंग करेंगी।
मन के आधार क्रिया और कारण ही है,
यही तुम्हारी जेब में है धन इसको नष्ट करो ना
ग्राहक तेरे हज़रत वही मुहम्मद है
इसी निर्णय में है खुदा ॥

(३३)

मेरा अमृतदायी 'जैन' था
रहा विश्व में उसी का मान।
लेकिन शिष्य हुआ अपने गुरु से महान
मुझको भी ऐसा वर दे दो हे भगवान ॥

(३४)

किया आग्रह 'ईशवर' के बाबा पर तुमने,
की सेवा उस परम ज्ञानी ने।

की तुमने प्रभु दया दरिद्र-वणिक् पर
मुझको भी ऐसा वर दे दो भगवान ।।

(३५)

यदि मैं जानूं दुनिया भ्रम है,
नमता करता तुझसे पहचान,
किया छल और दिया लोभ उसके बदले
पाया न कुछ है तेरी आस मुझे अब
तू ही सार है तो शेष असार है,
यूं ही पाया—जन्म मैंने इस शरीर में ।।

(३६)

बसंत में जो बोयेंगे, नित नया बीज,
वे ही सुख पावेंगे ठंडे मौसम में
वे खुदा और रसूल को याद करेंगे,
जीवन उनका सार्थक होगा ।

(३७)

पढ़ते कुरान क्यों नहीं मरा तू ?
पढ़ते कुरान क्यों हुआ न राख ?
पढ़ते कुरान जिया तू कैसे ?
पढ़ते कुरान मंसूर जला
पढ़ते कुरान निश्चिन्त रहा तू
छीन तुझ से भागा सब ले चोर ।।

(३८)

मोल एक कौडी का अपना न माने,
औरों से ना करे होड़,
दर्जन तजके सज्जन ढूंढ़े,

दिन रात अपनी देह वारे
औरों को खुद को भी सागर तारे
कही कहलावे मुसलमान ॥

(३९)

औरों पर जो बुरी नज़र ना रखें
धन देख कर जो कभी न ललचे
उपदेश दूसरों को ही सिर्फ सुनाए ?
धर्म नियम पाले तो धीर बने,
वही कहलावे मुसलमान ॥

(४०)

निर्जन में जो रहे, करे शाक का सेवन
मिट्टी जिसने मानी अपनी देह,
जिसने भी हो किया संतोष स्वल्पाहार
वही कहलावे मुसलमान ॥

(४१)

क्रोध करोगे तो खावोगे सब कुछ,
क्रिया और कारण सब क्रोध से जले
चोर क्रोध है अर्गल विधि का
कभी ना करे क्रोध मुसलमान कोई।

(४२)

खुदा साथ आये मेहमान बनकर
कर तो तुम वह कि जिसमे वह खुश होवे,
जो दो औरों को वही मिलेगा तुमको
कभीं नहीं क्रोध मुसलमान करे ॥

(४३)

तुम्हें छोड़ आएंगे मैदान किनारे
माटी के नीचे सब अंग सड़ जायेंगे,
लेंगे हिसाब तुमसे दाने दाने का
कभी नहीं चाहिए क्रोध मुसलमान कर ले ।।

(४४)

कलिमा ही पढ़ा और कलिमा ही याद किया
तन मन अपना केवल कलिमा बना दिया
फिर तो तेरे अंग अंग में यही समाया
और इसी से पहुंचा मैं भी अनन्त धाम ।।

(४५)

स्रोत ज्ञान का ही है कलिमा के माने
स्रोत शून्य का है अनन्त प्रवाह,
स्रोत शून्य का है खुद को पहचानना
स्रोत अनन्त है सागर का ।।

(४६)

आया था यहां सौदा करने
राह में लगा बाज़ार की ओर
हाथ धोखा खाया मुझसे ज्ञानी ने भी
क्या जीना पाकर जन्म यहां ।।

(४७)

पुरुष वही स्वर्ग धाम पावे
आहर करे जो दूसरों के संग संग
अच्छे दिनों में रोज़ा जो राखे,

निर्भय होके और जो हो नम्रशील
लोभ मोह मद अहङ्कार जो तज डाले
बस वहीं कहलावे मुसलमान ।।

(४८)

लोभ काम को जो मार सके
वही सहन शील बने दास ।
सहज रूप से साहिब को ढूंढे
वह ही वारे सर्वस्व अपना ।।

—०—

गीत-अनुभाग

दो गीत

अनुगायक

डा० रतनलाल शाँत

आशा रखने से किसे क्या मिला मेरे मन[1] !

(१)

गुण (प्रभु के) चार दिशाओं में व्यापक हैं, जानो
मारो भ्रम को मन को बस बांधे रखो
कइयों ने (प्रभु को) ऐसे देखा, पहचाना,
आशा रखने से किसे क्या मिला मेरे मन !

(२)

उसे बहुत दिन हुए तुम्हारा करते करते इंतजार
पहुंचाया कैसे जा सकता है वहां भला आबेहयात ?
जग की विपदा आए तुम पांच निमाज़ें पालो
आशा रखने भर से किसको क्या मिलता ?

(३)

पाप बरजने की इच्छा है, कोई फिरिश्ता ध्याओ
काहे चोर उचक्का पाला है रे अपने द्वारे ?
यों दोनों जन(नकीर-मुनकिर[2]) को वंचित ही करले
आशा रखने भर से किसको क्या मिलता मन मेरे !

(४)

रोज़ी ढूंढ़ो सही राह पर चलकर
घूम लगाओ चक्कर बीच बाज़ारों के,

---

१. पान-तन, पर अर्थ मन से है ।

२. दो साक्षी जो कंधों पर बैठे हमारे पाप पुण्य का लेखा रखते हैं ।

(अभी समय है) फिर जर्जरता छाएगी
आशा रखने से क्या मिलता, ऐ मन !

(५)

किसी भट्टिनी[1] को सम्पदा की लालसा
खाये जाती थी, पर पाई उसने विपदा
भट्ट[2] दूसरा आंचल में सब्जी बांधता
लाख समेटे गांठ डाल दे बारम्बार
आशा रखने से क्या मेरे मन मिलता !

(६)

एक व्यक्ति के द्वार, बजैया बाजे बजा रहा है,
रातों को जागे, दावत का लंगर तपा रहा है,
किसी और की डंडे चाबुक से हो रही पिटाई,
आशा से मेरे मन किसने भला कभी कुछ पाया?

(७)

कुछ तो रोज़ों और निमाज़ों का कर्त्तव्य निभाते
उनके तो भगवान स्वयं ही रहते हैं हितकारी
कुछ लोगों ने यों ही खो दी बड़ी उमरिया सारी
आशा से मेरे मन किसने भला कभी कुछ पाया ?

(८)

पास कई के शतशत कोठे[3] भरे धाम के,
अन्न भरा है, भांति भांति का, उन कोठों में,
भोजन नहीं किन्हीं को मिलता, बच्चे रोते,
आशाओं से क्या मिलता है मन मेरे ?

---

१. कश्मीरी पंडितानी।
२. कश्मीरी पंडित। हिंदुओं के लिए प्रयुक्त नाम ।
३. कोठे (कुछि)— लकड़ी के अंधे कोष्ट, धान के भंडारघर।

(९)

पिछड़ गए कुछ मुंह ढककर रोया करते हैं
श्रम न करें, वे हाथों में भी न लें दरांती
तपी शुष्क है भूमि किन्हीं की, वे रोते हैं,
मेरे तन मन, आशाओं से क्या पाते हैं ?

(१०)

दशरावण के घर में देखो जशन हो रहा
(उसे क्या पता) चढ़ा आ रहा है हनुमान,
राजा राम दशानन को वश करलेंगे ।
मेरे तन मन आशाओं से क्या पाओगे ?

(११)

कहीं एक गूंगा जन्मा अभिजात वंश में
यों हो गया एकाएक राजा का भाई
अन्य भला[1] गूंगों के कुल में जन्मा, गूंगा हुआ
बांधने से आशाएं मेरे मन ! क्या मिलता ?

(१२)

पालन किया जप का उस पालाश ऋषि ने
जो भी उसने इच्छा की वह सब पाया
और दूसरी ओर नाग ऋषि ने मछलियां[2] पकाईं
पर केवल आशा से मेरे मन ! क्या मिलता ?

(१३)

जग में कुछ जन वन-वाटिका दान कर रहे
और कोठियां दान धर्म-प्राण कर रहे

१. भला चंगा था वह । गूंगा नहीं था ।
२. कथा संकेत । अर्थात स्वेच्छा से कार्य कर सका ।

और कई तो औरों के घर दान कर[1] रहे
आशाओं से नहीं कहीं कुछ मिलने का।

(१४)

मुकाबला मत करो प्रकृति से (या प्रभु से)
है किसका बेदाग यहां आंचल जग में ?
एक वही है जिसकी ओर लोग नमते
तन मेरे, क्या मिलता है आशाओं से ?

(१५)

कई लोग घर और कोठियां बनवाते
कई और अपना सब संचित दान करें
कुछ ऐसे हैं छलते हैं और डालें मार
आशाओं से किसे मिला क्या, मेरे मन ?

(१६)

जन्म लिया जग में (इसका) अपमान न कर
फिर तो सकल (यहां से चलकर) वहीं मिलें
अठ्ठारह हज़ार जग उसको करें प्रणाम
शेष, किसी भी आशा से क्या मिलता है ?

(१७)

कर्मों का (नियति का) गाएं जय जयकार
इनका न कोई है आदि न अंत नहीं विस्तार
काहे भागो, करो धर्म का नित सेवन
आशाओं से मिलता क्या है, मेरे मन !

---

१. अर्थात (स्वार्थ से) अपने हित का बलिदान करने को तय्यार नहीं। (सं०)

(१८)

सोख लोगे सागर यदि क्या उपकार करो ?
दुस्साह छोड़ो यों अपना उद्धार करो
वरना मन को छल से केवल बर्बाद करो
आशाओं ने किसे क्या दिया, तनमन मेरे !

(१९)

कई खरौड़े, मांस पकाएं स्वाद भरें
मूल्यवान ढेरों पदार्थ वे हैं खाते
कुछ को खाने को साग न तन को वसन मिले
आशाओं से ही किसे क्या मिला, मन मेरे?

(२०)

दिया दैव ने किसी-किसी को सड़ा-गला
बुद्धिहीन, खाए जाए उनको चिन्ता
कोई दूसरा मुक्त जगत-जंजाल से
किसे क्या दिया आशाओं ने, मेरे मन ?

(२१)

कोई स्त्री जैसे फूला खिला चिनार
सजी धजी पहने उज्ज्वल सफेद अम्बर
कोई दूसरी महिला कुतिया सी बिलखे
केवल आशाओं से कोई क्या पाए ?

(२२)

दिया (ईश ने) किसी एक को पुत्रों का धन
दूजा रोए किस्मत को क्यों लड़की जन्मी
और निपूता तीजा कलपे (हीन-क्षीण-मन)
आशाओं से मिलता क्या है मेरे मन !

(२३)

रानी (अर्द्धांगिनी) एक की लोभ-लालसा वाली
कितनी उसकी महत्त्वाकांक्षाएं कर सकता वह पूरी !
किसी और ने बीवी कौए ने ज्यों कोयल पाई
इसलिए मिले क्या आशाओं से, मेरे तन मेरे मन !

(२४)

महती किसी व्यक्ति की पत्नी ज्यों रुद्राक्ष व हीरा,
उसे क्या पड़ी, हो अधीर वह सागर को मथ डाले
मछली जैसे मगरमच्छ से दूजा त्रस्त बिचारा
दे सकती क्या, मेरे मन, इस जग में केवल आशा ?

(२५)

किसी एक को मिली स्वर्ग और मुहरों की निधियां
पर वह दे दे तनिक भी नहीं दिया हुआ ही ले ले
(दूजे के मन चोर बसा) वह पर घर सेंध लगा ले
मेरे मन ? क्या मिलता है इस जग में आशाओं से ?

(-६)

किसी एक की रानी मैना जैसे तोता पाए
राहें देखे पति की, (उमड़ नयन में नेहा आए)।
बिल्ली से ज्यों बाज़, दूसरा पत्नी से घबराए[1]
मेरे तन मन, इस जग में, आशा से क्या-क्या पाए ?

(२७)

किसी एक को मिला यहां है श्वेत, लिपा घर
सुन्दरियों के संग विलसता दीवाना है,

---

१. वह बाज़ की उड़ान तथा स्वतंत्रता को बाधित करती हैं।

और दूसरा ठिठुर रहा है ठंड में बाहर
किसे क्या मिला, मेरे मन, आशा से बंधकर ?

(२८)

एक डूबता जैसे अस्ताचल का सूरज
उसे करे क्या आभूषण क्या करे प्रसाधन,
और दूसरा भवसर[1] में भूखा ही रहा
दे सकती क्या मेरे मन ! केवल आशा ?

(२९)

चार बार और मध्याह्न को (निमाज़ पढ़ो भाई)[2]
ऐसे ही नज़दीक ईश के वहां पहुंच पाओगे
यही कर रहा विनती 'नुंद' ऋषि आपसे
उम्मीदों से, नहीं मिले कुछ, मन मेरे !

---

१. भवसर से केवल संसार का तात्पर्य है इसका अन्य आलंकारिक अर्थ नहीं ले सकते ।

२. कुछ पांच समय की निमाज—फजर, जुहर, असर, मगरिब, अशा ।

खुद समझ जाएगी, री जोबन की दीवानी ![1]

(१)

आदि जन्म के बाद तुम्हारा जन्म हुआ
हर[2] की कुदरत से ही तेरा उदय हुआ
जग से बची क्योंकि धोई मांझी काया
खुद समझ आएगी री जोबन की दीवानी !

(२)

वन प्रान्तर में पशु[3] जैसे तू जन्मी
बड़े योग्य थे संग तेरे दो हितकारी[4]
अब काहे को बहुत दूर तू छिटक[5] गई
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(३)

कौन तुम्हारे मीत तुम्हारे सलाहकार थे ?
तेरे रंगों पर फिदा हुए जोबन-माते
अब बुढ़ा गई तो विष-सी उनपर वाम हुई
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(४)

जब तक तू थी घर के बाहर दर्शनीय[6]
तब चाहा अर्जित न किया परलोक कभी

---

१. सम्बोधन (कवि की एक शिष्या (शंग बीबी) के प्रति है जिसको उन्होंने 'यावनमच' कहा था। २. शिव। ३. निर्दोष (चौपाइयों सी। ४. नकीर-मुनकिर। ५. स्रष्टा ईश्वर से अलग। ६. अर्थात युवती सुंदर

जिनको पाया वे गिनती के हैं री साथी
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(५)

गुरु के काहे अपनाती हो नहीं वचन
विमुख हो रही हो इच्छाओं के कारण
तुझ को लगा कि जैसे चट्टानों में घुन
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(६)

बीत गया दिन हाय ! कर रही इंतजार
फंसी लोभ में दबी हाय ! री मोह-भार
आज बुढ़ापे बीच बसाएगी घर-बार ?
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(७)

लोभ कामना से आज तक तू बच पाई
साथ तुम्हारे दो सज्जन हैं दो हितकारी
पूरे किए हमारे प्रण और पाली वाणी
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(८)

सोलह भेदो को पहचाना, रहस्य जाने
बंद खंदकों में पैठी, पर्दे खोले
जब लौटी लेकिन वहीं झाड़ दामन आई
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(९)

कूल किनारे लगी रही तू (सदा निसंग)
भीड़ सभाओं में जाने की क्या उमंग ?

जैसा करती रही भरोगी वैसा ही
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(१०)

क्रोध किया और फल पर दृष्टि जमाई
नाहक नारे[1] जहन्नुम को अंजलि फैलाई
अब तो उस परवर्दगार की करो अर्चना
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(११)

अब तो तुझको खांसी, और भी रोग लग गए
बातें उलटी-सीधी, पैर हैं कहां पड़ रहे !
अब तो घुटने नहीं उठेंगे, रोग लेगेंगे
खुद समझ जाएगी री जोबन की दीवानी !

(१२)

इस दुनिया में, जिसमें मैंने जन्म लिया
कैसा मेरा हाल रहे, विश्वास क्या ?
वहां[2] गिराएंगे चित तुमको मारेंगे
खुद समझ जाएगी, री जोबन की दीवानी !

(१३)

तुम्हें घाटियों मैदानों से घुमा लाएंगे
बहुत देर तक रही भटकती तू जग में
ऐसे में तेरा रहस्य क्यों पहचानें ?
खुद समझ जाएगी, री जोबन की दीवानी !

---

१. नार-आग । अरबी का शब्द कश्मीरी में तत्सम प्रयुक्त होता है ।
२. वहां अर्थात परलोक में । दूसरी दुनिया में कयामत के दिन जहां पाप-पुण्य का हिसाब लेंगे ।

(१४)

तू यौवन के घर से चल कर हो आई
जिसको सम्मुख पाया, उसके पीछे लागी
मोहित किया 'ईशवर' के[1] सन्यासी को
खुद समझ जाएगी, री जोबन की दीवानी !

(१५)

साधु सज्जनों से मोहित हो, सदा भजो
गाओ हर्ष में मिश्रधातु-सी वहां बजो
मैं हूं कुजन[2] लगी काहे मेरे पीछे
खुद समझ जाएगी, री जोबन की दीवानी !

(१६)

क्रिया साधना की कितनी नदियां पाटीं
इसी वजह से ऋषियों ने दुविधा झेली
अब तो यौवन नहीं रहेगा कि जवानी
समझ आएगी स्वयं, जवानी दीवानी !

(१७)

व्यस्त रही हर समय न देखा दिवस रात
आ पहुंची खुद तेरे सामने खबर-बात
तभी हुई मोहित अपने पर स्वयं आप
समझ जाएगी स्वयं, जवानी दीवानी !

(१८)

जाने कौन अरी थी तू किसकी दुहिता ?
मिला तुम्हारे पूर्व तुम्हारा संदेसा

---

१. एक बौद्ध भिक्षु ।
२. आरी माया ! मेरा गला छोड़ो। मुझे दुर्जन ही समझ लो, भले ही ।

क्यों गरीब को सोखेगी मोहित करके ?
समझ जाएगी स्वयं, जवानी दीवानी !

(१९)

काहे ऋषियों मुनियों को री कष्ट दिया
तेरा मज़ार भी मिट्टी का ही नहीं रहे
तुम खो जाओगी 'बहराम' बाज़ार में
समझ जाएगी स्वयं, जवानी दीवानी !

(२०)

आओ यहां तुम, यह किसने था बतलाया ?
यहां नचाएंगे ज्यों रूई का गाला
जाओ और अर्हत पर श्रद्धा वारो[१]
समझ जाएगी स्वयं, जवानी दीवानी !

(२१)

तेरा हाल अपूछा ही रह गया यहां
विश्वास करो 'नुंद' पर, उसने ही सिर्फ पढ़ा
भगवान ! कल्कि काल में मेरी रक्षा करलो
समझ जाएगी स्वयं, जवानी दीवानी !

—★—

---

१. बौद्ध भिक्षुओं के प्रति श्रद्धा का संकेत। या फिर पाठांतर हो सकता है।

Printed by Jahangir Printing Press
Srinagar